File No. 23 – 175 /12 (WRO)

✸ विषय ✸

कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी विमर्श तथा अधुनातन यथार्थ

✸ शोधकर्ता ✸

सहा.प्रा.शेवाळे राजाराम जी.

महाराजा सयाजीराव गायकवाड कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, मालेगाँव कैंप

(महाराष्ट्र)

सन् - 2013

File No. 23 – 175 /12 (WRO)

✸ विषय ✸

कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी विमर्श तथा अधुनातन यथार्थ

✸ शोधकर्ता ✸

सहा.प्रा.शेवाळे राजाराम जी.

महाराजा सयाजीराव गायकवाड कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, मालेगाँव कैंप

(महाराष्ट्र)

सन् - 2013

अनुक्रमणिका

अ.नं.	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
1	कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1 - 48
2	स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास - दृष्टि, संवेदना और शिल्प	49 - 58
3	नारी का मनौवैज्ञानिक विकास	59 - 69
4	'मित्रो' हिंदी कथा साहित्य का अनोखा नारी पात्र	70 - 91
5	मित्रो मरजानी उपन्यास - पात्र, भाषाशैली, शिल्पविधान एवं नये आयाम की दृष्टि से	91 - 106
6	उपसंहार	107 - 109
	आधार ग्रंथ	110
	संदर्भग्रंथ सूची	111
	पत्र-पत्रिकाएँ	112

भूमिका

हिंदी उपन्यास मानव - चरित्रांकन का अन्यतम माध्यम है । विशेषकर नारी के चरित्रगत विशिष्ट पहलुओं को उपन्यास में सदा ही महत्व दिया जाता रहा है । नारी का जीवन समाज में बहुत ही संघर्षशील रहा है । उत्थान-पतन के कितने दौरों से गुजरती हुई नारी आज वर्तमान में अपनी स्थिति तक पहुँच सकी है । परंपरा से चली आयी विचारधारा के अनुसार नारी-चरित्र, मनुष्य तो क्या देवताओं के लिए भी अज्ञेय है । प्राय: उसके चरित्र की यह अज्ञेयता ही उसके प्रति आकर्षण का एक कारण विशेष रही है । जो ज्ञेय है, वह निंदा-स्तुति का कारण बना; जो अज्ञेय है, उसे सैद्धांतिक तुला पर विश्वास-अविश्वास के पलड़ों में तौलने का प्रयत्न चलता रहा । विचारधाराओं के बाट बदलते रहे और कभी विश्वास का पलड़ा भारी रहा तो कभी न्युनाधिक रुप से नारी का मूल्यांकन करते रहे पर नारी किसी परिधि विशेष में बाँधी न जा सकी । काल के पग ही ओछे न पडे, त्रिकालयज्ञ-दृष्टि भी भटक गई । नारी प्रश्न-चिह्न थी और प्रश्न-चिह्न बनी रही ।

घर-परिवार, समाज, धर्म, शास्त्र और नीति, परंपराओं ने अपनी-अपनी सीमा-रेखाएँ खींची, कला ने कुछ तराशा, कुछ अंकित किया, कुछ शब्दों में बाँधा, परंतु जिसके लिए यह सबकुछ हुआ था, वह जीवन ही अब बगावत करने लगा तो कला ही सर्व प्रथम जीवन के साथ बागी हुई । समाज, धर्म, शास्त्र और नीति की समन्वित शक्ति विद्रोही जीवन की बगावत को थाम न पाई। कला विद्रोही जीवन के साथ है । अत: उसने समझदारी से काम लिया । उसने जीवन के विद्रोही वेग को भी समझा; समाज, धर्म, शास्त्र एवं नीति की समान्वित शक्ति को भी पहचाना । कला मध्यस्थ बनी । उसने जहाँ एक ओर जीवन का पक्ष प्रतिपादित किया, वही दूसरी ओर वह समाज, धर्म, शास्त्र और नीति को भी कम-अधिक प्रश्रय देती रही है ।

कला की इस मध्यस्थता ने एक बहुत बड़ा काम किया । जीवन को विछिन्न होने से नहीं बचाया बशर्ते विद्रोह-मंथन से प्राप्त होनेवाले नवनीत को भी विस्मृति के जबड़ों से बचा लिया । यह सत्य है कि

जीवन की उद्दामता से कला को शक्ति मिली, पर उसकी उदंड़ता का अंध समर्थन कला ने नहीं किया । अत: कला औऱ विशेषकर उपन्यास विधा में जीवन की धड़कन कालानुक्रम से सुरक्षित है ।

नारी, जीवन की तरह साहित्य की भी अनिवार्यता बनकर रही है । समाज, धर्म, शास्त्र और नीति, संस्कृति औऱ साहित्य की रुचि भी नारी के प्रति सजन रही हैं, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण, समाज के इस 'अर्धांग' की अनदेखा नहीं कर सकता है ।

हिंदी उपन्यासों में नारी की सामाजिक, पारिवारिक, साहित्यिक एवं मनौवैज्ञानिक स्थिति एवं मान्यता विषयक तथ्यों तथा पृष्ठभूमि को देखने का प्रयास किया है । साथ ही मनोभावों के अंतर्गत व्यक्त स्वरुप पर भी विचार किया है ।

हिंदी साहित्य की कई नामचीन लेखिकाओं में हिंदी साहित्य जगत में नारी के पक्ष को जबर्दस्त उजागर किया है । उन्होंने नारी के सामंतकाल से संघर्षशील जीवन-यात्रा को लगभग सभी स्तर पर शोषित, पिड़ित एवं दोयम दर्जे के जीवन को अभिव्यक्ति दी हैं । इसी वजह से नारी के बदलते स्वरुप को समाज और साहित्य बहुत ही भली-भाँति से समझ रहा है । नारी अपनी इस वजूद की लड़ाई में अपना दायित्व निर्वहन कर रही हैं, अपितु कई ऊचाइयों को भी छू रही हैं ।

हिंदी साहित्य की लब्धप्रतिष्ठित लेखिकाएँ मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, उषा प्रियंवदा, मन्नु भंडारी, गीताश्री, कृष्णा अग्निहोत्री और तेज-तर्रार एवं बोल्ड मानी जानेवाली सबसे खास कृष्णा सोबती स्त्री स्वातंत्र्य की समर्थक, नारी के बदलते स्वरुप की अग्रणी रही हैं । ये सारी लेखिकाएँ स्त्री को आत्मसम्मान, आत्मगौरव एवं आत्मा-विश्वास के साथ आत्मबल प्रधानकर उन्हें आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक, शिक्षा क्षेत्रों में आत्म-निर्भर बनाकर मानवीय संवदेनाओं के साथ स्वयं-सिद्धा बनी देखना चाहती हैं ।

नारी के पराश्रित, दयनीय, शोषित अबला, भोग्या एवं वस्तु की परिधि से निकालकर सबला एवं मानव जीवन की कीर्ति का परचम बनाने की यात्रा में नारी कई दृष्टियों से अपना रास्ता पार कर चुकी हे और कर रही है । कृष्णा सोबती ने अपनी साहित्य-साधना के द्वारा नारी को पुरुषों के बराबर अंकित किया है । आप की नायिका बड़ी सशक्त एवं सामर्थ्यशाली हैं, वह किसी पर आश्रित नहीं है । प्रस्तुत लघुशोध परियोजना में नारी के इसी रुप को रेखांकित किया गया है ।

इस लघुशोध परियोजना का कार्य करते समय सर्व प्रथम माता-पिता के शुभाशिष मुझे शक्ति प्राप्त करते रहे हैं ।

प्रस्तुत शोधकार्य करने के लिए आदरणीय गुरुवर डॉ. विठ्ठलिसंह ढाकरे, डॉ. जे. वाय्. इंगळेजी ने विषय चयन से लेकर लघुशोध परियोजना की प्रस्तुति तक हर पल मेरा मार्गदर्शन किया, मुझे प्रेरित एवं प्रोस्ताहित किया । उसलिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ । अपनी कार्य व्यवस्तता के बावजूद भी आपने हृदय से सहयोग दिया ।

इस लघुशोध परियोजना को सफल बनाने के लिए महाराजा सयाजीराव गायकवाड कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, मालेगाँव कैंप, जिला नाशिक के मा.प्राचार्य डॉ. सुभाषजी निकम, उर्फ आबासाहेब भूतपूर्व प्राचार्य डॉ. आर. के. देवरे, मा.उपप्राचार्य डॉ. आर. एस. देवरे, डॉ. डी. व्ही. ठाकोर, हिंदी विभागाध्यक्ष तथा अन्य सहकारियों ने मुझे सहयोग एवं मार्गदर्शन, प्रेरणा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । अत: मैं उनका हृदय से आभार ज्ञापित करना मेरा कर्तव्य मानता हूँ ।

यह शोधकार्य करते समय मेरी अर्धांगिणी सौ. भारती, मेरे पुत्र राहुल और पुत्री संजना ने मेरा हौसला बढ़ाया और सहयोग दिया, इसलिए उनका भी धन्यवाद करता हूँ । मेरे मित्र एवं शुभिचंतकों का तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से स्नेहाशीष देनेवालों के प्रति भी आभार प्रकट तकता हूँ । अंत: मैं उन सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनका नामोल्लेख करना संभव नहीं हो पाया है।

लघुशोध परियोजना को स्वीकृति देकर आर्थिक अनुदान देनेवाले विशविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) व उनके पश्चिमी क्षेत्रीय कार्यालय, पुणे (WHO) का ऋणी हूँ । इस शोध कार्य के लिए शोध सामुग्री उपलब्ध कराने में महाविद्यालय के ग्रंथपाल एवं अन्य कर्मचारियों का आभार व्यक्त करता हूँ । महाविद्यालय के सहयोगी व सहायक प्राध्यापक तथा कार्यालयीन कर्मचारियों का सहयतापूर्वक आभार ज्ञापित करता हूँ ।

14 फरवरी, 2017.

अंगारिकी चतुर्थी सहा.प्रा. शेवाळे राजाराम जी.

कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी विमर्श तथा आधुनातन यथार्थ

अनुक्रमणिका

अ.क्र.	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
	अध्याय प्रथम	
1	**कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	**1 - 48**
	1.1 **कृष्णसोबती का व्यक्तित्व**	1 - 12
	1.1.1. जन्म	1
	1.1.2. बचपन	1
	1.1.3. वेशभूषा	2
	1.1.4. नौकरी	2
	1.1.5. आत्मदोह	3
	1.1.6. धार्मिक प्रवृत्ति	3
	1.1.7. जिंदादिल और निर्भीकता	3
	1.1.8. अपने आप में चिंतन-मनन	4
	1.1.9. पारदर्शिता	4
	1.1.10. सरलता	4
	1.1.11. विद्रोह और सरसता	4
	1.1.12. स्वभाव	5
	1.1.13. आतिथ्यशील एवं खुशिमजाज	5
	1.1.14. अभिरुचि और घुम्मकड़ी	6
	1.1.15. निड़र व्यक्तित्व	6
	1.1.16. हठवादिता और आत्मविश्वास	6
	1.1.17. धैर्यवती श्रोत्री	7
	1.1.18. संस्कार	7
	1.1.19. अलग पहचान	8
	1.1.20. आत्मप्रचार से रहित	8
	1.1.21. आस्था की दीपशिखा	9

अ.क्र.	.शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
	1.1.22. अन्य लेखिकाओं की प्रशंसक	9
	1.1.23. निरंतर लगन और शोध-अनुसंधान	10
	1.1.24. स्त्री स्वातंत्र्य की समर्थक	10
	1.1.25. लेखन की गुणवत्ता में विश्वास	11
	1.1.26. पुरस्कार एवं सम्मान	11
	1.2 **कृष्ण सोबती का कृतित्व**	12 - 48
	1.2.1. उपन्यास	14 - 37
	1.2.2. कहानी संग्रह	37 - 40
	1.2.3. कविता	40
	1.2.4. संस्मरण	40 - 43
	1.2.5. अन्य साहित्य	43 - 48
	अध्याय द्वितीय	
2	**स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास : आदृष्टि, संवेदना और शिल्प और भाषा**	**49 - 58**
	2.1. दृष्टि एवं संवेदना	49 - 51
	2.2. उपन्यास पर पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव	51 - 53
	2.3. उपन्यास और आधुनिक बोध	53 - 54
	2.4. उपन्यास और आधुनिक बोध का आरोप	55
	2.5. स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास का शिल्प	55 - 57
	2.6. स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास की भाषा	57 - 58
	अध्याय तृतीय	
3	**नारी का मनोवैज्ञानिक विकास**	**59 - 65**
	3.1. नारी की समस्या और समाधान	65 - 66
	3.2. समकालीन हिंदी साहित्य और नारी विमर्श	66 - 69
	3.3. आज़ाद देश और आज़ाद नारी में फर्क	69

अ.क्र.	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
	अध्याय चतुर्थ	
4	**मित्रो मरजानी उपन्यास में नारी-विमर्श एवं अधुनातन यथार्थ**	**70 - 91**
	4.1. 'मित्रो' हिंदी कथा साहित्य अनोखा नारी पात्र	70 - 74
	4.2. नारी की सामाजिक स्थिति एवं गति	74 - 76
	4.3. स्वच्छंदता, सामाजिकता और नैतिकता	76 - 81
	4.4. 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी-चेतना	82 - 86
	4.5. 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी-विमर्श तथा अधुनातन यथार्थ	86 - 91
	अध्याय पंचम्	
5	**'मित्रो मरजानी' उपन्यास : पात्र, भाषाशैली, शिल्प - विधान एवं नये आयाम की दृष्टि से -**	**92 - 106**
	5.1. मित्रो मरजानी उपन्यास : पात्रों की दृष्टि से	92 - 100
	5.2. मित्रो मरजानी उपन्यास : भाषाशैली की दृष्टि से	100 - 102
	5.3. मित्रो मरजानी उपन्यास : शिल्पविधान की दृष्टि से	102 ₹ 104
	5.4. मित्रो मरजानी उपन्यास : नये आयाम की दृष्टि से	104 -106
	उपसंहार	**107 - 109**
	~ आधार ग्रंथ	**110**
	~ संदर्भग्रंथ सूची	111
	~ पत्र-पत्रिकाएँ	112

कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नारी विमर्श तथा आधुनातन यथार्थ

अध्याय प्रथम

1. कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व एवं कृतित्व :-

1.1. कृष्णा सोबती का व्यक्तित्व -

प्रत्येक रचना में रचनाकार का निजी जीवन एवं व्यक्तित्व और उनकी संचित संस्कृति की छाप अवश्य रहती है । इसलिए साहित्यकार के जीवन एवं व्यक्तित्व का परिचय देखना आवश्यक हो जाता है । कृष्णाजी की साहित्य कृतियों का मूल्यांकन करते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका व्यक्तित्व भी उनकी रचनाओं के समान असाधारण है । उनका असाधारण जीवन एवं व्यक्तित्व साहित्य संबंधी विचारों में ही नहीं, जीवन के प्रति देखने का दृष्टिकोन तथा उनकी आदतों में भी दिखाई देता है । उनके जीवन परिचय एवं व्यक्तित्व को लेकर बहुत ही अल्प लेखन हुआ है । इस संदर्भ में डॉ. सुलोचना अंतरेड्डी ने लिखा है- "स्वयं कृष्णाजी ने अपने जीवन एवं व्यक्तित्व को लेकर न लिखा है न लिखना आवश्यक समझा है । इस संबंध में जो सामान्य जानकारी यहाँ-वहाँ प्राप्त हुई है, उसके आधार पर उनके जीवन एवं व्यक्तित्व का विवेचन किया गया है ।"[1]

1.1.1. जन्म -

कृष्णा सोबती का जन्म गुजरात, झेलहम, चनाब नदियों के बीच के इलाके में 19 फरवरी, 1925 को हुआ है । यह इलाका अब पाकिस्तान में आता है । कृष्णाजी का आरंभिक काल देश और समाज की दृष्टि से उथल-पुथल का था । परिवर्तनों के बीच उनके जीवन के पहले दिन बीतें हैं । उनका जन्म स्वातंत्र्यपूर्व काल में हुआ है और लेखन स्वातंत्र्योत्तर काल में हुआ है ।

1.1.2. बचपन और परिवार -

कृष्णाजी का जन्म जिस परिवार में हुआ उस परिवार में माता-पिता, तीन बहनें और एक भाई हैं । आपके पिताजी फौज में थे । बचपन में ही आपका पुस्तकों से परिचय हुआ था । आपके

[1] कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी - डॉ.सुलोचना अंतरेड्डी

परिवार में किताबों के प्रति विशेष लगाव था । पिताजी आपको अच्छी-अच्छी किताबें पढ़कर सुनाते थे । इससे स्पष्ट होता है कि कृष्णाजी का बचपन अपने परिवार के बीच बिता है ।

1.1.3. वेशभूषा -

कृष्णाजी अपने लिबास को लेकर बहुत चर्चित रही है । कृष्णाजी का लिबास उन्हें राष्ट्रीय लिबासों से अलग रखता है । इसका यह मतलब नहीं कि वह भारतीय कपड़े पसंद नहीं करती बल्कि वह जो लिबास परिधान करती है, उसे भारत-पाकिस्तान विभाजनपूर्व लाहौर, लखनऊ की महिलाएँ पहनती हैं ।

कृष्णाजी अपने कपड़े खुद डिझाइन करती हैं । उनके रंग, उनके दुपट्टा पर लगनेवाला जरी का गोटा वह स्वयं ढूँढती हैं, चुनती हैं । इससे यह पता चलता है कि वह अपने लिबास या वेशभूषा को लेकर कितनी कॉन्सियश है । खुद कृष्णाजी अपने लिबास के संदर्भ में कहती है- "मुझे मेरे वस्त्रों से मुहब्बत है । उसमें मुझे एक शक्ति मिलता है । वह मुझे तटस्थ चलने में सहायभूत होते हैं । मुझे उस बात की चिंता नहीं कि वह नौकरशाहीवाले लेखक को पसंद आए या न आए ।"[2]

कृष्णाजी ने 'हम हशमत' में पोशाख को और भी अच्छा बतलाया है । आमतौर पर मैं ऐसे कपड़े पहनना पसंद नहीं करती, जो मेरी शक्ल-सूरत से कही अधिक कीमती लगे । कोई रेशमी , रेशम या रंग आँख पर चढ़ जाता है तो बार-बार उसे दोहराती चली जाती हूँ । मैं बार-बार उसे पहनती हूँ, जो मुझ में खप जाए, जो हलका हो ढीला हो ।

अलमारी में ज्यादा कपड़े मेरा माथा गर्म कर देते हैं । लगता है मेरी बाहर और अंदर की सफाई पर कोई रंग-बिरंगी कूची फेर गया है । फुटकर करोड़ो के गुच्छे जैसी 'मिडियाँकर' चीज़ कोई और नहीं । यह बात सृजन के संबंध में और भी सच है ।

कृष्णाजी सादगीपूर्ण वेशभूषा अपनाती है । सादगीपूर्ण रहन-सहन उनके जीवन का अभिन्न अंग है । वे चमक-दमक से हमेशा परहेज करती है ।

1.1.4. नौकरी -

देश विभाजन के समय पढ़ाई छोड़कर दिल्ली आई और उसके बाद सन् 1950 तक सिरोही के महाराजा तेजसिंह के यहाँ गवर्नेस का काम किया । इसके पश्चात् एक वर्ष दिल्ली के आर्मी

स्कूल में अध्यापन का कार्य किया । आपने सन् 1952 से 1980 तक दिल्ली प्रशासन में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के संपादक का काम बखुबी से निभाया । सन् 1980 ते बाद पूर्णरुप से साहित्य सेवा में मन लगाकर नौकरी से इस्तिफा दे दिया । सन् 1982 में आप भोपाल के निराला सृजन पाठ में आवासिय लेखिका रही है ।

आपने भारत विभाजन के आधार पर प्रसिद्ध दूरदर्शन धारावाहिक 'बुनियाद' की परामर्शदात्री के रुप में काम किया है । तदुपरांत आप शिमला के इंडियन इंस्टिट्युट ऑफ अडवान्स्ड स्टड़ीज में सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य रही है । वर्तमान में आप केंद्रिय साहित्य अकादमी की महत्तर एवं मानद सदस्या हैं ।

1.1.5. आत्मदोह -

हर मनुष्य में आत्मदोह गुण होता है । मनुष्य में पाये-जानेवाले तमाम गुणों के साथ आत्मदोह का गुण ज्यादा होता है तो किसी में कम । अजय तिवारी ने 'साक्षात्कार' पत्रिका में अपने लेख 'उधेडबून एक निरर्थक विवाद' में कृष्णा सोबती के इसी गुण को परखा है । उनके अनुसार हिंदी में श्रेष्ठ लेखन करनेवाली लेखिका इतना आत्मदोह क्यों रखती है कि निरर्थक विवादों में उलझे ? एक सजग रचनाकार की तरह कृष्णाजी अपने अंतर्विरोधों की सबसे विश्वसनीय व्याख्यानकार है । उन्होंने यह महत्वपूर्ण वाक्य लिखा है - "एक ओर खेतिहर वर्ग से जुड़ी हूँ जो अपने मिजाज के खुलेपन से आपको कुछ भी कर सकने की जुर्रत देता है, दूसरी ओर एक सफेदपोश वर्ग की उपज हूँ, जिसकी सफेदपोशी उसकी भंगिमा की पर्याय बन चुकी है ।"[3]

1.1.6. धार्मिक प्रवृत्ती -

कृष्णाजी के व्यक्तित्व में पंजाबी संस्कृति कुटकुट कर भरी हुई है । 'जिंदगीनामा' इसका अनुपम उदाहरण है । आप धार्मिक वृत्ति को भली-भाँति निभाती है ।

1.1.7. जिंदादिली और निर्भीकता -

कृष्णाजी को देखने से हमें पंजाब प्रांत की समृद्धि, सुंदरता, सदृढ़ता का दर्शन होता है । अपने आप में चिंतारत रहना भी कृष्णाजी के स्वभाव की एक खासियत रही है । वे स्वयं को दूसरों की नजरों से देखती है ।

1.1.8. अपने आप में चिंतन-मनन -

कृष्णा सोबती का संपूर्ण व्यक्तित्व एवं साहित्य को देखने के बाद ऐसा दिखाई देता है कि वह हमेशा अपने विचारों में निमग्न रहती है । किसी घटना या प्रसंग को देखकर चिंतन-मनन करती हुई नजर आती है । वह औरों की नजर से भी अपने आपको देखती -"कृष्णाजी दूसरों की निगाहों से अपने आपको देखती है । अपने लेखन के बारे में भी वे खुद अंतर्मुख होकर सोचती है तब वे पाती है कि लिखना तो मूल्यों के लिए होता है, मूल्यों के दावेदारों के लिए नहीं ।"[1] अतः कृष्णाजी चिंतन-प्रधान तथा मननशील प्रतिभावान लेखिका है ।

1.1.9. पारदर्शिता -

पारदर्शिता कृष्णाजी के व्यक्तित्व का एक विशेष गुण है । इस सद्‌गुण के सहारे उनके व्यक्तित्व में अद्‌भूत साहस, आत्मबल और दृढ़ता का संचार होता है, बल्कि मानवीय मूल्यों के प्रति गहरी आस्था निर्माण कर उसकी लड़ाई को उर्ध्व न सही स्वस्थ दिशा अवश्य देती है । उनके कथा साहित्य के नारी पात्रों में उनका यह गुण बहुत झलकता है । जैसे मिक्षो, स्त्री, राबयाँ, बुढ़ी अम्मू आदि । रहस्यवादिता या किसी बात को छिपाना कृष्णाजी को बिल्कुल पसंद नहीं है । उनका व्यवहार, आचार-विचार में भी एकदम खुलापन दिखता है ।

1.1.10. सरलता -

कृष्णाजी को सरल एवं सीधे-सादे लोग अधिक पसंद हैं । उनका जीवन एवं रहन-सहन बहुत ही सरल है । अपने आपको प्रस्तुत करना उन्हें कभी भाता नहीं हैं। स्वभाव से सुंदर एवं सदृढ़ कृष्णाजी को सदगी बहुत पसंत है ।

1.1.11. विद्रोह और संघर्ष -

जिस प्रकार माता-पिता को अपनी संतान पर किये अपने संस्कारों पर तथा अपने बच्चों पर विश्वास होता है । उसी प्रकार कृष्णाजी को भी अपनी रचनाओं को अपनी भाषा से, दिलो-दिमाग से

1. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी - डॉ. सुलोचना अंतरेड्डी

संस्कारित करती है अर्थात् रचती हैं तो कोई उनकी रचनाओं या संतानों पर उंगली उठाता हैं, उन्हें गलत बतलाता है तो उन्हें कैसे सहन करेंगी ?

कृष्णाजी ने 'हैलो सरवर' में कहा है कि 'प्रिय सरवर ! अनेक विवादों से घीरी रहती हूँ । कृष्णाजी का संपूर्ण जीवन संघर्षमय रहा हैं । वह हमेशा अन्याय के विरुद्ध लड़ाई लड़ती रही है और आज भी लड़ रही है ।

1.1.12. स्वभाव -

सुश्री कृष्णाजी का स्वभाव सीधा-सादा एवं सरल है । उनके स्वभाव को लेकर कहा जाता है कि वह एकदम गरीब है और दिल से बहुत अमीर है । उनके मिजाज में गुस्सा और शांति एक साथ दिखाई देता है- "अजीब सर्द-गर्म मिट्टी की तासीरवाली यह तस्वीर स्वयं कृष्णा सोबती को कभी-कभी हैरान करती है ।"[1]

अत: वे एक खुद्दार औरत है । अपने स्वभाव के बारे में खुद कहती है "स्वभाव में वही रवानी है, तासीर में वही अनोखा पानी है । सच तो यह है, सिर्फ चनाब ही चनाब का सानी है ।"[2]

कृष्णा सोबती एकदम जिंदादिल औरत है । इसी कारण वे हमेशा उत्साही और आनंदी रहती हैं ।

1.1.13. आतिथ्यशील एवं खुशमिजाज -

कृष्णाजी का व्यवहार बहुत ही सलीकेदार, शांत, निर्मलता से परिपूर्ण है तो आतिथ्य भी उतनाही मानवीय है । वह अपने मेहमानों का स्वागत खुशमिज़ाज ढंग से करती है, चाहे वह कोई भी हो, किसी भी प्रकार का हो । वह हर किसी से एकदम सामान्य व्यक्ति की तरह आतिथ्य करती है । हर अतिथि उनके लिए असाधारण होता है । इसीलिए उनकी खुशमिज़ाजी में किसी तरह कमी उन्हें बिल्कुल पसंत नहीं है ।

---

1. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी - डॉ. सुलोचना अंतरेड्डी

2. वही

1.1.14. अभिरुचि और घुम्मकड़ी -

भारतवर्ष के गिने-चुने साहित्यकारों से एक कृष्णा सोबती है । जिनके लिए साहित्य सृजन महज अभिरुचि नहीं बशर्ते एक कर्तव्य है । जिनके सामने दुनिया की सारी नेमते फीकी पड़ती है ।

हिंदी की लेखिकाओं में कृष्णाजी एक अनोखा रसायन है । देश-विदेश में भ्रमण करनेवाली कृष्णाजी को खुले में घुमना, ज्यादात्तर हिल स्टेशन पसंद है । घुमने फिरने के साथ-साथ उन्हें अध्यापन में भी रुचि है । महंगे रेस्तरा में जाना, खाना खाना उन्हें बहुत पसंत है । दिल्ली के कनॉट प्लेस का रेस्तरा उन्हें सबसे ज्यादा भाता है । इसी पर उन्होंने अपना संस्मरण 'वे दिन भी क्या दिन थे' लिखा हैं । कृष्णाजी साहित्य सृजन करना अपना धर्म मानती हैं । अपितु किस पर, किस तरह और कैसे लिखा जाए, इसके लिए उनका अपना पक्ष है, पसंद है ।

1.1.15. निड़र व्यक्तित्व -

कृष्णाजी का जीवन सादगी भरा है किंतु वे ही बहुत निड़र व्यक्तित्व की धनी है । वह अपनी बात को चाहे कितनी भी कटू क्यों न हो, अपने शब्दों में निड़रतापूर्वक कहती है । 'मित्रो मरजानी' उपन्यास की नायिका 'मित्रो' का निड़र होकर अंकन किया है -"अब तुम ही बताओ जेठानी, तुम जैसा स्तनबल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता । ... बहुत हुआ हप्ता-पखवारे ... और इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास है कि मछली-सी पड़पती हूँ ।"[1] कृष्णाजी की लेखनी संकोच या डर से जरा भी घबराती नहीं । 'मित्रो' उनके निड़र व्यक्तित्व का सुंदर उदाहरण है ।

कृष्णाजी मुलत: निड़र एवं स्पष्टवादी है । किसी बात को कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं हैती है । इसी कारण उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं। निड़रता, स्पष्टवादिता, पारदर्शिता उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं ।

1.1.16. हठवादिता और आत्मविश्वास -

हठवादिता और आत्मविश्वास अनुवांशिक अर्थात् खानदानी गुण है । कठिण से कठिण काम करना और सफलता प्राप्त करना उनका हठ और आत्मविश्वास काम में सहायता करते हैं । अपनी जिद, आत्मविश्वास और निड़रता की वजह से उन्की अपनी एक खास पहचान बनी हैं ।

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

1.1.17. धैर्यवती श्रोत्री -

कृष्णाजी में दूसरों को सूनने, समझने की अनुपम दृष्टि है अर्थात् उनमें संयम भी भरपूर है । श्री. नरेश मेहता के शब्दों में -"कृष्णाजी अत्यंत कुशल कुलीनता से आपके साथ अथक घंटों नहीं बल्कि चाहे तो दिनों बैठी रह सकती हैं और आपको सुनती रह सकती हैं । इस सौजन्यता का लाभ कुछ लोगों की तरह आप भी अपना संपूर्ण उपन्यास सुनाकर उठा सकते हैं और मजा यह होगा कि उस रचना की प्रशंसक वह होगी । ऐसे धैर्यवान और श्रोता एवं गुणग्राही व्यक्ति हिंदी में अब भी शमशेर और सोबती के रुप में है । मेरा ख्याल हे कि सर्वश्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', जैनेंद्र, भगवतीचरण वर्मा, वाचस्पति पाठक से लेकर धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा आदि तक उनके आचरण की इस कुलीन भाषा के कायल रहे हैं ।"[1] नरेश मेहता के संस्मरण 'एक अपरिभाषित बांधवी कृष्णा सोबती' (पृ.45) कन्हैयालाल नंदनजी ने अपने पत्र में लिखा है - "मैं कभी नहीं कहूँगा कि सोबती में परमहंस वृत्ति स्पष्ट है । दूर्दमनीय क्षणों, स्थितियों और व्यक्तियों की उपस्थिति में सोबती प्राय: निरपेक्ष हो जाती है । मैं अनेक मनोरंजक घटनाओं, व्यक्तियों को जानता हूँ, जिनके मात्र सम्मान में वह घटों श्रोता बनी बैठी होगी । एटलस का आकाश उठाना याद आता है । हाँ ! कभी कंधा बदलते हुए सोबती ही ये सम्मान उपाख्यान सुनाये तो सुनाए, मैं नही और वह भला क्यों सुनाने लगी । मैं आकाश उठाये एटलास को देख रहा हूँ ।"[2]

1.1.18. संस्कार -

कृष्णाजी के संस्कार बहुत प्रभावित करनेवाले है, वह एक संस्कारी पंजाबन है । उन्हें अपने पिताजी से शिष्टाचार और अनुशासन के गुण संस्कार रुप में मिले हैं । स्वयं लेखिका के अनुसार घर के खुले लचिकले अनुशासन ने जहाँ हमें खुलेपन से खुलने-पनपने का मौका दिया, वहाँ इसकी कड़ी व्यवस्था ने हमारे चुनावों को तय किया । उन दिनों हमारी खरीद भी नंबर एक थी किताबें और नंबर दो थी स्टेशनरी । जैसे तैसे हम भाई-बहन बड़े होते गए, रुचि के मुताबिक अपनी पसंद की किताबों के निकट पहुँचते गये । नौ बजे कमरे की बत्ती बुझा दी जाती । बीच के दरवाजे का परदा उठा दिया जाता । घर के व्यावहारिक अनुशासन के तरह किसी भी किस्म का जाहिर लाड़-चाव कभी न दिखता । हमें न

---

1. सारिका, अंक-258, मार्च, 1980
2. कन्हैयालाल नंदन का पत्र मेरे नाम

उसका इंतजार होता, न उसकी चाह । गलती की छूट नहीं थी और कुछ सही कर डालने का इनाम नहीं था । साल भर के उपहार अक्सर हमें आर्य समाज के जलसों के बुक स्टॉलों से मिलने, वही सही अर्थों में हमारे लिए किताबों का जश्न होता । हम बेझिझक अपनी माँग हमेशा बड़ों के आगे रख सकते थे । सही तर्क देने पर मनचाहा फैसला लिया करते थे । जब सभी इससे उलटा होता तो हम डर कर अपनी दलीले देते । यह एक तरह से हमारी हिम्मत और काबिलीयत का इम्तहान होता ।"[1]

1.1.19. अलग पहचान -

समकालीन लेखकों में कृष्णाजी की अपनी एक अलग पहचान है । उन्होंने अपने अनुभवों को ऐसी वाणी दी है, जो बहुत ही जानदार है । 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार', 'तीन पहाड़', सूरजमुखी अंधरे के', 'जिंदगीनामा', 'ऐ लड़की', 'दिलो-दानिश', 'समय सरगम' आदि आपके द्वारा लिखे उपन्यास ही आपकी अलग पहचान के सर्वोत्तम उदाहरण हैं । नारी के अंतर्मन की बात को मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सबसे खास बात यह है कि मानवीय संवेदनाओं के साथ पर्त-दर-पर्त बेबाकी से व्यक्त करना और निसंकोच कहना वह भी एक स्त्री होकर कहना आदि बहुत-सी बातें गिनाई जा सकती हैं। "अनुभव की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति की सशक्तता के कारण उनका लेखन दाद देने योग्य बना है । नारी मन तथा नारी जीवन का आपने जिस गहराई से चित्रण किया है, उसमें उन्हें अपने काल की सशक्त लेखिका सिद्ध किया है ।"[2] इससे यह सिद्ध होता है कि कृष्णा सोबती ने लेखिका की हैसियत से स्वतंत्र एवं अलग पहचान निर्माण की है ।

1.1.20. आत्मप्रचार से रहित -

वस्तुत: कृष्णा सोबती के जीवन पर कोई ठोस जानकारी नहीं मिलती है । खुद कृष्णाजी ने भी अपने जीवन के बारे में कुछ लिखना मुनासिब नहीं माना है - "प्राय: लेखक गण अपने तथा अपने लेखन के बारें में बताने-लिखने और छापने के मोह को टाल नहीं सकते, लेकिन कृष्णाजी में यह वृत्ति दिखाई नहीं देती ।"[3] कृष्णा सोबती अपने बारे में कुछ बताना या लिखना नहीं चाहती है । इस पर

---

[1] आलेख - मैं, मेरा समय और मेरा रचना संस्कार

[2] कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी - सुलोचना अंतरेड्डी

[3] कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी - सुलोचना अंतरेड्डी

डॉ. सुलोचना अंतरेड्डी ने लिखा है, "दिखावटीपन अथवा प्रदर्शन की प्रवृत्ति उनको कभी पसंद नहीं आयी ।"[1]

1.1.21. आस्था की दीपशिखा -

आस्था जीवन में हो, लेखन में हो या नारी जीवन को व्याख्यायित करने में हो कृष्णाजी अपनी आस्था के संकल्प में बहुत ही दृढ़ नजर आती है । आपकी आस्था कही भी भंग नहीं होती है । आस्था आपके जीवन का अहम एवं अभिन्न अंग बनी हुई है और आप उसी पर प्रतिबद्ध है । नारी मुक्ति के दावेदारों में कृष्णाजी का नाम अग्रणी है । इस प्रभाव को आपने अपनी रचनाओं द्वारा बखूबी से तथा तेज तर्रार शब्दों में स्पष्ट किया है । कृष्णाजी पुरुषसत्ता की जंजिरों में जकड़ी स्त्री -पुरुष की तरह संपूर्ण रुप से मुक्त देखना चाहती है । इसी आस्था को लेकर कृष्णाजी चल रही है ।

1.1.22. अन्य लेखिकाओं की प्रशंसक -

कृष्णा सोबती हिंदी साहित्य में एक लब्धप्रतिष्ठित लेखिका के रुप में पहचानी जाती है । उनकी साहित्यिक परंपरा हिंदी साहित्य की अनुपम निधी है । ऐसी स्थिति में कृष्णाजी एक स्त्री सुलभ लक्षणों से दूर रहकर अन्य लेखिकाओं के प्रति अपने मन नें उदात्त भाव रखती है । आपने कभी महिला लेखन और लेखिकाओं के लेखन का अपमान नहीं किया है बल्कि आप उनका सम्मान करती हैं । आप समस्त लेखिका वर्ग का उनकी रचनाओं की उदात्त या उदार मन से प्रशंसा करती हुई गर्व महसूस करती है -"स्त्री लेखऩ की शक्ति भी इतनी मामूली नहीं रही ... क्या सचमूच स्त्री लेखन की ऊर्जा और प्रखरता को आपकी पूरी छूट है कि लौटिए बंगमहिला तक और खोलिए अपने पुराने संस्कारों के कपाट ।"[2]

कृष्णाजी सिर्फ महिला या स्त्री लेखन की प्रशसंक है, ऐसी बात नहीं है । आप पुरुष लेखन का भी उतना ही सम्मान करती है । मार्च, 2000 ही 'हंस' पत्रिका में कृष्णाजी ने स्वयं लिखा है- "हम स्त्री और पुरुष समान वर्णमाला और शिक्षा के समान जीवन की लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहे हैं । दोनों अपने-अपने स्वतंत्र मनोबल और मनोभाषा के सहारे नये जीवन की ओर देख रहे हैं । ... लोकतंत्र में

1. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी - सुलोचना अंतरेड्डी
2. हंस - संपा. राजेंद्र यादव, मार्च, 2000

उनका अधिकार पुरुष के अधिकार से अलगन नहीं है । साहित्य में यह भेद क्यों ?"[1] कृष्णाजीने उसी पत्रिका में कहा है- "आत्म अभिव्यक्ति किसी भी देह - मन का अधिकार है । इसके तहत स्त्री भी पुरुष संवेदना को समझने-बुझने की हकदार है । साहित्य मात्र पुरुष का एकालाप नहीं । इस लोक में स्त्री और पुरुष दोनों का साँझा संवाद है ।"[2]

1.1.23. निरंतर लगन और शोध-अनुसंधान -

कृष्णाजी ने हड़बड़ी में कोई रचना नहीं की है । उनकी हर रचना के पीछे उनके कडे परिश्रम और शोध-अनुसंधान की छवि रही है । उनकी रचना 'जिंदगीनामा' को ही ले सकते है, जो उनकी बीस वर्ष के कड़ी परिश्रम और शोध का कालजयी उदाहरण है ।

कृष्णाजी की हर रचना शिल्प, भाषा की ताजगी, उनके इन्हीं गुणों को दर्शाती और समझाती है ।

1.1.24. स्त्री स्वातंत्र्य की समर्थक -

कृष्णाजी स्त्री स्वातंत्र्य की जबर्दस्त समर्थक है । आपने स्त्री के जीवन को नजदीक से देखा है और अनुभव भी किया है । आपने देखा है कि, भारतीय स्त्री अनेकविध बंधनों में जकड़ी हैं । उसे बंधनमुक्त करना अर्थात् स्वतंत्र करना युग की माँग है । कृष्णाजी ने अपनी लेखनी द्वारा साहित्य और जनमानस में नारी जीवन को ऐसा निरुपित किया है कि सारा साहित्य जगत् हिल उठ़ा । कृष्णाजी ने नारी पात्रों को पुरुष पात्रों के समान दिखाया है । डॉ. गीता सोलंकी का कथन ठीक लगता है -"संक्षेप में कहे तो पूरा दोष न तो पुरुषों का है न स्त्रियों का, सच्चाई यह है की विचारधारा को निश्चित दायरों में बाँध दिया है । इस संबंध में नारी या तो पुरुष पर सर्वस्व न्यौछावर करने और सामाजिक अन्याय सहते जाने की परंपरागत भूमिका निभाती है या दमन के विरुद्ध विद्रोह का रुख अपनाती हैं । दोनों ही स्थितियाँ नासमझी की परिचायक है । अन्याय सहना जड़ता की निशानी हैं और विद्रोह विध्वंस का प्रारुप । आवश्यकता इस बात की है कि संतुलन के दृष्टिकोन को आधार बनाकर परिवेशगत मानसिकता को बदलने का प्रयास किया जाए । संतुलित दृष्टिकोन ही नारी मुक्ति को सम्यक दिशा

1.हंस - संपा. राजेंद्र यादव, मार्च, 2000
2. वही

प्रदान कर सकता है, जो अत्यंत आवश्यक है ।"[1] रुढ़ि-परंपरा, रीति-रिवाज, संस्कृति नामक सारे बधनों को तोड़कर कृष्णाजी के नारी पात्र स्वतंत्र जीवन जीना चाहते हैं । अत: नि:संदेह कह सकते है कि कृष्णाजी नारी मुक्ति की जबर्दस्त हिमायती है ।

1.1.25. लेखन की गुणवत्ता में विश्वास -

कृष्णा सोबती एक सशक्त लेखिका है । अपनी अलग पहचान के लिए मशहुर कृष्णा की प्रत्येक रचना विशिष्ट हैं । किसने कितना लिखा, यह महत्वपूर्ण नहीं होता बहरहाल क्या लिखा है ? कृष्णाजी की किताबे प्रकाशित करनेवाले प्रकाशक ने बहुत खुब लिखा है - "भारतीय साहित्य के परिदृश्य पर हिंदी की विश्वसनीय उपस्थिति के साथ कृष्णा सोबती अपनी संयमित अभिव्यक्ति और सुधरी रचनात्मकता के लिए जानी जाती है । कम लिखने को अपना परिचय मानती है, जिसे स्पष्ट इस तरह किया जा सकता है कि उनका 'कम लिखना' दरअसल विशिष्ट लिखना है ।"[2] कृष्णाजी इस बात पर अधिक विश्वास करती है ।

कृष्णाजी का साहित्य हमें प्रभावित करता है कि आधुनिक और विकसित समझनेवाला आज का समाज मानसिकता और प्रवृत्ति से कितना पिछड़ा है । 21वीं शताब्दी में भी स्त्री-पुरुष असमानता, मानसिकता की संकीर्णता आदि को दूर करने के लिए उकसाता है, प्रेरित करता है । इस लिए हम कृष्णाजी को महिला सशक्तिकरण और स्वतंत्रता की मजबूत दावेदारों में से एक मानते है ।

1.1.26. पुरस्कार एवं सम्मान -

कृष्णा सोबती समकालीन लेखिकोओं में से एक नामचीन एवं सशक्त लेखिका है । आपको निम्नांकित पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हैं -

1. सन् 1980 साहित्य शिरोमणि पुरस्कार ।
2. सन् 1980-81 - 'जिंदगीनामा' को साहित्य अकादमी पुरस्कार ।
3. सन् 1980-82 में उच्च अध्ययन संस्था, शिमला और पंजाब विश्वविद्यालय की फेलोशिप, साहित्य अकादमी की महत्तर फेलोशिप ।

---

1. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास - डॉ. गीता सोलंकी
2. दिलो-दानिश - कृष्णा सोबती आवतरण पृष्ठ

4. सन् 1983 - साहित्य कला परिषद पुरस्कार ।

5. सन् 1996-97 में मैशिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय सम्मान ।

6. सन् 1999 को रामकृष्ण जायस्वाल हारमोनी अवार्ड से सम्मानित और पहला कथा चुड़ामणी पुरस्कार ।

7. सन् 2000 में शिवपुजन सहाय शिखर सम्मान, बिहार सरकार ।

8. सन् 2000-2001 को हिंदी अकादमी दिल्ली का 'शलाका' सम्मान ।

9. सन् 2005 को आपका प्रसिद्ध उपन्यास 'दिलो-दानिश' के अंग्रेजी अनुवाद 'दि हार्ट हैज इटस् रिजन्स' (रीमा आनंद) को हच का क्रासवर्ड बुक अवार्ड से नवाजा गया ।

10. 20 मार्च, 2006 में हिंदी, उर्दु कथा कुंभ में भारतीय भाषा परिषद के मंत्री कुसुम खेमानी के द्वारा समकालीन लेखिका सम्मान ।

11. सन् 2007 में के. के. बिड़ला फाउण्डेशन ने 'समय-सरगम' उपन्यास पर 17 वाँ व्यास सम्मान ।

12. केंद्रिय साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्या ।

इसे अलावा कई राष्ट्रीय पुरस्कारों व अलंकारों से कृष्णा सोबती को सम्मानित किया गया है ।

1.2. कृतित्व -

कृष्णा सोबती बहुमुखी प्रतिभा की सशक्त एवं लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार है । उन्होंने जो सुना-देखा और अनुभव किया, उसको अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से बखूबी अंकित किया है । कृष्णा जी हिंदी साहित्य जगत् में एक उपन्यासकार के रुप में सुप्रसिद्ध हैं । उन्होंने उपन्यास के साथ-साथ कहानी, संस्मरण, कविता और साहित्यिक लेखों का तथा अन्य साहित्य कृतियों का सफलतापूर्वक लेखन किया है । उनका लेखन विविधता से परिपूर्ण है ।

कृष्णा सोबती की साहित्य संपदा अर्थात उपन्यास, कहानी, कविता, संस्मरण, संकलित रचना, पटकथा तथा अन्य रचनाएँ निम्नांकित हैं -

- **उपन्यास -**

1. डार के बिछुड़ी - 1559
2. मित्रो मिरजानी - 1967
3. यारो यार - 1968
4. तीन पहाड़ - 1968
5. सूरजमुखी - 1968
6. जिंदगीनामा - 1979
7. ऐ लड़की - 1991
8. दिलोदानिश - 1993
9. समय सरगम - 2000

- **कहानी संग्रह**

1. बादलों के घेरे - 1980

- कविता

1. 'प्यासेखास'
2. 'गलबाँहियों सी उमड़ती' 'सोबती एक सोहबत' में प्रकाशित हुई हैं ।

- **संस्मरण**

1. हम हशमत भाग-1 - 1979
2. हम हशमत भाग-2 - 1999

- **अन्य साहित्य**

1. सोबती एक सोहबत (संकलित रचना) - 1989
2. जैनी मेहरबान (पटकथा) - 2005
3. शब्दों के आलोक में - 2005
4. सोबती - वैद संवाद - 2007

कृष्णा सोबती की रचनाओं का सामान्य परिचय

उपन्यास -

1.2.1. डार के बिछुड़ी -

कृष्णा सोबती का सन् 1959 में प्रकाशित सर्वप्रथम लघु उपन्यास है 'डार के बिछुड़ी' । यह उपन्यास पंजाब की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर लिखा गया है । इसमें रुढ़ि और परंपराओं के बंधनों में जकड़ी नारी फिसलकर भटकने की मर्मस्पर्शी कहानी है । इसकी नायिका 'पाशो' एक निष्कलंक ग्रामीण युवती है । जब पाशो छोटी थी तभी उसकी माँ अपनी बच्ची को छोड़कर शेख जाति के लड़के के साथ भाग गई थी । 'पाशो' की माँ के इस कुकर्म से क्षत्रिय कुल पर जो कलंक लगा था, उसका फल पाशो को भुगतना पड़ा । पाशो के मामा-मामी और नानी उसे करमजली के नाम से पुकारते है और हमेशा उसे शंकाकुल नज़र से देखते हैं - "पसार छूने लगी - न शर्म न हया । अरी ओढ़नी अब तेरे गले तक से उड़ने लगी ... ।"[1] "एक दिन एक लड़के के हाथ में पाशो के रुमाल का टुकड़ा दिखाई पड़ता है तो घर में हलचल मच जाती है । शेख जी अपने दोस्त के दीवान जी के यहाँ पाशो को पहुँचता है । दीवान जी के यहाँ साज-संवारकर दीवनजी की मौसी ने उसे मुँह दिखाई के लिए बिठाती है । पाशो को झोली भर गई 'पाशो डार से तो एक बार दूर हो गई पर उसका ठौर न ठिकाना । परंपरा और रुढ़ियाँ में जकड़ी पाशो फिसल गई । वह भटकने लगी । पाशो का एक सपना था । किंतु एक पल में ही वह नष्ट हो गई । वह न घर की रही न घाट की । न अपनी रही न पराई ।"[2]

'पाशो' बूढ़े पति के पास रहती है । उसका एक बेटा पैदा हुआ । पाशो का छोटा भाई उससे मिलने आता रहता है । उसने यह सुना कि मामा के घरवाले और शेख जी के बीच अच्छा संबंध हो गया है । पाशो दीवान जी की बहु बनने से मामा खुश हो गए हैं । दीवान जी पाशो से काफी बडे थे । लेकिन वह पाशो को आदर और प्रेम देता था । एक दिन अचानक दीवान जी चल बसा । उसके रिश्तेदार बरकत और उसकी माँ ने मिलकर उसके साधन और मान लूट लिये । "वह अपने उस अतीत को भूल

---

1. डार से बिढुड़ी - कृष्णा सोबती, पृ.11
2. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी - डॉ. सलोचना अंतरेड्डी, पृ.35

चुकी थी जहाँ उसे केवल तिरस्कार मिला था, परंतु भाग्य में वह सुख अधिक दिनों का न था । उसे फिर से डार से बिछुड़ना का क्रम जारी था ।"[1]

बरकत ने पाशो को एक बूढे लालजी को बच दिया । एक दिन नींद से उठकर देखती है तो अपने को कहीं और देखती है । पाशो चिल्लाती और चिखती है लेकिन कोई फायदा नहीं होता । वह लालजी के तीनों पुत्रों की पत्नी बनकर जीती रही । लालजी का मंझला लड़का पाशों को बहुत चाहता है और उसे पत्नी बनाकर अलग रहने लगता है । इसी समय अंग्रेज और सिक्खों में लड़ाई होती है और वह लड़ाई मे मारा जाता है । पाशो फिर विधवा बन जाती है और उसके बिछड़ने का क्रम जारी रहता है ।

पाशो का सौंदर्य भरा मादक यौवन ही उसे प्राप्त डार से बिछड़ने का कारण बनता है । विधवा पाशो शरणार्थी स्त्रियों से जा मिलती है । भूख-प्यास से बेहोश होती है । एक नौजवान बेहोशी में उसे अपने घर ले जाता है । लेकिन अंग्रेंज़ों ने उसके घर को आग लगाने से औरत को कचहरी ले गए । कचहरी में पाशो अपने भाई से लिती है । वह पाशो को माँ के घर पहुँचाता है । वहाँ पाशो, माँ और बेटे को देखकर खुश होती है ।

पुरुष प्रधान समाज में पराश्रित स्त्री अधिक विरोध नहीं कर पाती । पति की मृत्यु के बाद बेघर विधवा की दुर्दशा का मार्मिक एवं जीवंत चित्रण संवेदना को जागृत करता है । पाशो की नानी का कथन सत्य लगता है । एक बार का भिरका पाँव जिन्दगानी धूल में मिला देगा । नारी का यौवन ही उसे विचारहीन बना देता है और उच्छृंखलता में उठा अनुचित कदम संपूर्ण जीवन को तहस-नहस कर देता है ।[2]

1.2.2 मित्रो मरजानी

कृष्णा सोबती का बहुचर्चित उपन्यास 'मित्रो मरजानी' सन् 1967 में प्रकाशित हुआ है । कृष्णा जी ने 'मित्रो' के माध्यम से अतृप्त यौन और अप्राप्त मातृत्व से ग्रस्त नारी की हृदयस्पर्शी स्थिति, कुंठाग्रस्त मन:स्थिति तथा संत्रास का संवेदनशील चित्रण किया है । मित्रो अधिकार के लिए लड़ाई नहीं

1. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरुप - डॉ. अनिता, पृ.49
2. डार से बिछुड़ी - कृष्णा सोबती, पृ.101

करती और न ही गिड़गिड़ाती है बल्कि वह आत्मबल प्राप्त करके चुनौती देती है । "मित्रो हिंदी साहित्य के लिए बहुत बड़ी देन है -"यह अनूठी नारी चित्र के सभी परंपरागत प्रतिमानों और उपमानों से पृथक एक नवीन रुप धारण किया है ।"[1]

मित्रो मरजानी का कथानक संयुक्त परिवार से लिया गया है । गुरुदास संयुक्त परिवार का प्रमुख है उसकी पत्नी धनवंती और तीन पुत्र तथा उनकी बहुओं के साथ रहते हैं । उन्हें एक लड़की हैं, जिनका नाम था - जनको । सबसे बड़ा बेटा बनवारीलाल और उसकी पत्नी सुहागवंती का जीवन आदर्श दांपत्य जीवन जीता है - "सुहागवंती समझदार और खानदान का ध्यान रखनेवाली है । वह एक भले स्वभाववाली आदर्श बहु है देवरानी बहुबेटियों के लिए ... लच्छमन की लकिर ... पलाँगी नहीं कि ... ।"[2] सबसे छोटा गुलजारीलाल की पत्नी फुलवंती का स्वभाव घमंड़ी एवं अहंवादी है । उसको अपने मायके का बहुत घमंड़ है । उसकी ससुराल में किसी से नहीं बनती । उसे परिवार की इज्जत से ज्यादा अपने गहनों से लगाव है । घरवालों को परेशान करना और पति को अपने इशारे पर नचाना ही उसका उद्देश है । ससुराल में नित कलह करती रहती है - "अब अपनी आँखों देख लो, तुम्हारी माँ-भौजाई मुझे फाड़-फाड़ खाती है, मैंने आज तक बड़ा सब्र रखा है, पर कान खोलकर सुन लो, मैं सिंगार-पट्टी न छोडूँगी ।"[3] मंझले सरदारीलाल की पत्नी सुमित्रावंती उर्फ मित्रो है । यही 'मित्रो' उपन्यास की नायिका है और उपन्यास की सारी कथा 'मित्रो' के इर्द-गिर्द घूमती है । मित्रो में यौवन की अमिट प्यास है । माँ के विलासपूर्ण घर के वातावरण में बचपन बिताने से पति सरदारीलाल उसकी शारीरिक प्यास को पूर्ण करने में असमर्थ है । मित्रो एकदम वाचाल औरत है । वह किसी को नहीं ड़रती है । अपनी सारी बाते बिना शरमाएँ कहती हैं । मित्रो सुहाग की खटिया के पास आकर जिठानी से कहती हैं - "जिठानी, तुम्हारे देवर-सा बगलोल कोई और दुजा न होगा । न दु:ख-सु:ख, न प्रीति-प्यार न जलन-प्यास ... बस आये दिन घौलधप्पा ... लानत - मलानत ।"[4] वह अपने कपड़े उतारकर फेकती है तथा फटाक से बिछौने पर सीधा लेटकर अपनी जिठानी से बेहिचक कहती हैं - "सच कहना, जिठानी सुहागवंती, क्या ऐसी छातियाँ किसी और की भी है ?"[5] सुहागवंती 'मित्रो' को समझाती है कि तू भी

---

1. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरुप - डॉ. अनिता
2. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
3. वही
4. वही
5. वही

स्त्रियों की - सी है । तुझ में और अन्य औरत में कोई फर्क नहीं है । सारी औरत एक जैसी होती है । सुहागवंती के इस कथन पर मित्रो निर्लज्जता से बोलती है- "जिठानी मेरे जेठ से कह रखना जब तक मित्रो के पास इलाही ताकद गै मित्रो मरती नहीं ।"[1] भले वह बात मानती नहीं तो सुहागवंती अचनाक रणचण्ड़ी बनकर कड़ककर सुनाती हैं -"चुप री, धर्म पिट्टी उड़कर कपडे पहन, नहीं तो मुझ से बुरा कोई न होगा ।"[2] इतना सबकुछ होने पर भी मित्रो बिछौने पर पड़ी-पड़ी अपनी बातें खुलकर सुहागवंती से कहकर रहती है । अपनी शारीरिक भूख न मिटने की वजह से बैचेन होती है और सतत उसी में लिप्त रहती है -"अब तुम्हीं बताओं जिठानी, तुम जैसा सत-बल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ ? देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता ... बहुत हुआ हप्ते-पखवारे ... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है इतनी प्यास कि मछली-सी तड़पती हूँ ।"[3]

'मित्रो' अपने इस तरह के जीवन से परेशान थी अर्थात असंतुष्ट थी । उसे उच्छृंखलता से जीने की आदत थी और ससुराल में भी उसी प्रकार रहना चाहती थी । वह परंपरागत रुढ़ियों और सामाजिकता, नैतिकता का विरोध करती है । वह समाज की संकीर्णता को नकारती है और चुनौती देती है । वह भारतीय नारी के आदर्शों एवं संस्कारों से भली-भाँति परिचित है । फिर भी सिर्फ समर्पण ही सबकुछ नहीं मानती है तो आत्मबल भी प्राप्त करती है । डॉ. अनिता ने अपने शोध प्रबंध में 'मित्रो मरजानी' के आवरण पृष्ठ से प्रकाशक का वक्तत्व दिया है -"यह न रवी ंद्र की ओस जैसी नारी है न शरत या जैनेंद्र की विद्रोहिणी गुत्थी। इसे आदर्श का कोई मोह नहीं है और न समाज का भय, न ईश्वर का, इसके लिए किसी विशेषण की आवशयक नहीं है । वह मात्र मांस मज्जा से बनी एक नारी है । जिसमें स्नेह भी है, ममता भी, माँ बनने की हौस भी, एक अविरल बहकी वासना सारिता भी ।"[4]

'मित्रो' बाहर से पत्थर के समान है तो अंदर से कोमल है । एक बार वह अपने घर पर आई आँच को दूर करने के लिए अपने गहने और कीमती सामान दे देती है । सरदारी और मित्रो में हमेश झगड़ा होता रहता है । सरदारी मित्रो की हरकतो से परेशान है तो गुरुदास और धनवंती मजबूर है । मित्रो की वजह से घर की तरफ कोई भी अच्छी नजर से नहीं देखता है । कई नौजवान भौरे की तरह

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही
4. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्भी का स्वरुप - डॉ. अनिता

मंड़राते हैं । मित्रो पुरुषों से हँसने-खेलने में रुचि रखती है । मित्रो के घरवाले उसके इस व्यवहार से तंग होते हैं और उसे मायके भेजने का निर्णय लेते हैं ।

मित्रो की माँ मित्रो को अच्छी तरह पहचानती है । मित्रो की जवानी व उसकी प्यास के लिए प्रेमी को तैयार करती है । मित्रो की माँ अपना जीवन खिलौने की तरह बिताती है । वह मित्रो को भी अपनी तरह ही बनाना चाहती है । लेकिन मित्रो समझती है और पछताती है तथा अपने-आपको रोकती है । इस बात को लेकर मित्रो अपनी माँ को कोसती हुई कहती है- "तू सिद्ध भैरों की चेली, अब अपनी खाली कड़ाही में मेरी और मेरे खसम की मछली तलेगीं ? सो न होगा, बोबो कहे देती हूँ ।"[1]

फट से निकलकर नशे में तर पति सरदारीलाल की तरफ बढ़ती है । पति को अपने पास लेकर उसके हर अवयव को सहलाकर उसकी छाती में मुँह छिपा लेती है । फिर अंगड़ाई लेकर उठ बैठती है और हाथ-पाँव दबाकर सिर चूमकर कहती है -"कही मोरे साहिब जी को नजर न लग जाये इस मित्रो मरजानी की ।"[2]

'मित्रो' वर्तमान काल के साहित्य जगत के सभी पात्रों से एकदम अलग अपितु यथार्थ का उद्घाटन करनेवाली आज की नारी है । मित्रो मरजानी यह साहित्य कृति स्त्री-पुरुष की प्रकृति प्रदत्त इच्छा कामवासना की अतृप्ति का विवेचन है । आज तक साहित्य में पुरुष की ही आवाज सुनाई देती थी । सामाजिक और मानवीय ढाँचे को लेकर पुरुष-सत्ताक समाज में स्त्री पक्ष दबा हुआ नजर आता था । पुरुषों जैसी स्वच्छंदता स्त्री में देखना सामाजिक व्यवस्था के अनुरुप नहीं लगती थी । परंतु मित्रो मरजानी के द्वारा कृष्णाजी ने इसको बखूबी से तोड़ा है और स्थापित भी किया है । कृष्णा सोबती लिखती है -"वह साहित्य के मानवीय औऱ सामाजिक पक्ष का यकीनन विरोध करती है, आत्म-अभिव्यक्ति किसी भी देह का अधिकार है, इसके तहत स्त्री भी पुरुष संवेदना को समझने-बूझने की हकदार है । साहित्य मात्र पुरुष का एकालाप नहीं, साँझा संवाद है ।"[3]

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. हंस. संपा. राजेंद्र यादव, मार्च, 2000

1.2.3 यारो के यार

प्रकाशन क्रम की दृष्टि से 'यारो के यार' कृष्णा जी का तीसरा लघु उपन्यास है । यह सन् 1968 में प्रकाशित हुआ है । यह एक लंबी कहानी है । यारो के यार में महानगरीय सरकारी दफ़्तर की वास्तविकता और उसके कर्मचारियों की व्यवस्था, भ्रष्ट भाषा और व्यवहार की जटिस परिस्थितियों को हमारे सम्मुख रखा है । इसमें चित्रित मानसिक गुलामी अंग्रेज़ों की देन है । कृष्णाजी ने कार्यालयीन कर्मचारियों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है । इसमें दो वर्ग है, एक अफसर और दूसरा क्लर्क । बड़े-बड़े व्यवसायी सरकारी अफसरों को खुश करके अपना काम निकालते हैं । दफ़्तर के अधिकतर अफसर संपर्क और घूस से ऊँचे पद प्राप्त कर लेते है । भवानी बाबू दफ़्तर का हेड क्लर्क है और उसको भी उसका हिस्सा मिल जाता है । भवानी बाबू पर गफलत का आरोप लगता है तो शर्मा कहता है - "यार भनानी बाबू को इस हालतका क्या सबब है कोई मुहरबंद फरमान तो नहीं मिल गया इन्हें ।"[1] इस आरोप को लेकर उन्हें जबरन छुट्टी दे रहे हैं । बेटे की मौत होने पर भी भवानी बाबू परिवारवालों की मनाई के बावजूद दफ़्तर जाता है । क्योंकि उसकी खुर्ची खतरे में थी । सूरी भवानी बाबू को टैक्सी में बैठते वक्त फटकार फेकता है "चुतिया, साला, किस्तो की कार में लट्टू बना घूमता है, बहन चोद, किसी दिन हराम का चूना झड़ने पर आ गया तो सारी चिनाई धरी रह जाएगी ।"[2]

एक क्लर्क अपना सारा जीवन दफ़्तरी फाइल और साहब के दरम्यान बिताता है । दफ़्तर में होनेवाले वाद-विवाद, भ्रष्टाचार, चापलुसी, एक-दूसरे पर कीचड़ उछालना आदि यथार्थता के साथ अंकित हुए हैं । असल में चाटुकारिता, चम्मचबाजी क्लर्कों का शौक या आदत नहीं, मजबूरी है । काम के प्रति निष्ठा का जमाना गया । अब तो नजरों में वही रहता है जो भेंट चढ़ाता है, तोहफों या मोटे वचनों की । दफ़्तर के लोग एक-दूसरे के साथ रहकर भी ऊँच-नीच का भेदभाव औऱ अनैतिकता के भावों को बनाए रखते हैं । मनसुखानी का कथन चुस्त है -"हर जगह सगेवालों का ही बोलबाला है दोस्त । आज की तारीख में हर सगेवाला हर सगेवाल का संगेवाल है ।"[3] इस कथन को सुनकर ब्रांच के बुजुर्ग अकाऊन्टेट जियालाल फाइल में माथा खपाते हुए कलम नीचे रखते हुए सिऱ हिलाकर कहते है -

---

1. यारों के यार - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

"जीओ बेटी जीओ ... तुमने तो निचोड़ ही निकाल डाला इस धाँधली और कबीलापरस्ती का । आज ब्राह्मण का, बिनये का, कायस्थ-कायस्थ का ... ।"[1]

सरकारी नौकरशाहों और कर्मचारियों की अनैतिकता, अनास्था और भ्रष्टाचार को लेकर कृष्णाजी ने इस उपन्यास में हर पहलू को बड़े सुंदर शब्दों में वास्तवता के साथ प्रस्तुत किया है । अपनी पदोन्नती के बारे में अफसर जिन मार्गों का अवलंबन करते हैं वह अत्यंत खराब है -"क्या छोटी बात करते हो यार ! इस बहते पानी में कीचड़ और कमल का क्या काम । सच पूछो तो हर फाइल समंदर है समंदर । जाल पड़ा नहीं की माल मिला नहीं ।"[2] किसी और को छुपाकर कोई गलत काम करता हुआ मालून हुआ तो उसे खुश करने के लिए उसे भी गलत तरिके से कुछ हासिक करवा देते हैं । इसे देखने के लिए किसी वातवरण में नहीं जाना पड़ता । खुद को बुद्धिजीवी कहलानेवाला आदमी किस हद तक गिर सकता है, यह क्लर्कों की मानसिकता का सुंदर उदाहरण है - "चुप ओ चुतियानंदन आजकल जो उठता है रिश्वत के खमीर से नंबर दो या पैसा जोड़ खानदानी अमीर बना फिरता है ।"[3]

आज हर एक आदमी आदर्शों को , नैतिकता को भूल चूका है । पैसा और आगे बढ़ने की होड़ में मनुष्य बीच के रास्तों को अपना रहा है । रिश्वतखोरी, धोकाधड़ी, भ्रष्टाचार, बहानेबाजी, चमचागिरी आदि का सहारा लेता है । बक्षी का कथन स्पष्ट करता है कि -"जो लक्ष्मी के जोर से इस कलगुजी देवी को रिझायेंगे, भेट चढ़ायेंगे वहीं खुशकिस्मत मुरादें भी पाएँगे ।[4]

इस परिस्थिति में भ्रष्टाचार और तरक्की का सबसे अहम हिस्सा औरतों का भी है । कम समय में अमीर और ऊँचे पद को पाने के लिए औरत का सहारा लिया जाता है । हजारासिंह और प्यारासिंह जिस तरह से औरतों के नखरों के लिए या उनके ग्रेड़ निर्माण करने के लिए कमाई के हिसाब से फीस के अलावा पैसा देता है । तमाशा इसी में से एक है । भाटिया अवस्थी से स्टील लाइसेसं के लिए इसी सिलसिले में मिलवाता है । औरतों का इस व्यापार में जो इस्तमाल होता है, उसको शर्मा और सुरी के वार्तालाप के द्वारा उजागर किया है - "औरतों के कोऑपरेटिव से क्या मतलब है तुम्हारा दोस्त ? वाह भोले बादशाह, रहते किस दुनिया में हो । हर नाक नक्शे और कद-बुत की शेयर होल्ड़र

---

[1] यारों के यार - कृष्णा सोबती
[2] वही
[3] वही
[4] वही

जनानी का कार्ड़ तैयार रखता है । सेल और टेलिफोन के जरिए इजारबंद सर्विस चलाता है ।"[1] हजारासिंह और प्यारासिंह दफ़्तर के क्लर्क या अफसरों को भी पहचानते हैं । किस काम के लिए किसा बात का और किन लोगों का सहयोग लेना पड़ता है । यह सारा वह बहुत अच्छी तरह से जानते हैं । वह दोनों लायसेंस, टेंड़र और ठेके प्राप्त करने के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन, पिकनिक पार्टियाँ और लड़कियाँ और औऱतों का भी प्रयोग करते हैं । मेहमानों की खातिरदारी के लिए हर प्रकार का स्वागत होता है ।

भ्रष्ट व्यवहार और भ्रष्ट भाषा का तथा भ्रष्ट लोगों में एक प्रकार का अभाव दिखाई देता है । दफ़्तर के नौकरशाह, क्लर्क जानते हैं कि भले ही हर फाइल कितनी भी बड़ी हो जाल पड़ते ही माल हो जाये, लेकिन इनके हाथ न आना - "अमा यार छोड़ दे चर्चे, जाल पड़ते रहेंगे माल मिलते रहेंगे । अपने हाथ क्या लगेगा - यह कलम घसिटी और यही क्लर्की का ग्रेड ।"[2]

अंततः स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास की कथा आधुनिक युग को वास्तविकता के साथ प्रकट करती है । हजारासिंह काम प्राप्त करने के लिए हर बुरे मार्गों का अवलंबन करते हैं । दफ्तरों के नौकरशाह भ्रष्टाचार करते हैं तो क्लर्क भी अन्य पद्धति से चमचागिरी, धोखाधड़ी करके अपना बौनापन दिखा देते हैं। संपूर्ण उपन्यास में आदि से अंत तक भ्रष्टता का जिवित तथा यथोचित निर्वाह हुआ हो, क्योंकि यह क्लर्कों के वजूद का प्रश्न है ।

लेखिका ने दफ्तर की दुनियाँ में चलनेवाले हर कार्य को एकदम खुलकर बेनकाब करके रख दिया है ।

1.2.4 तीन पहाड़ -

'तीन पहाड़' यह उपन्यास 'यारों के यार' के साथ प्रकाशित हुआ लघु उपन्यास है । यह एक प्रतीकात्मक उपन्यास है । तीन पहाड़ उपन्यास की नायिका जया के जीवन को बाधित करते हैं । 'मित्रो' की तरह 'जया' के जीवन में भी प्रेम की विफलता को उपन्यास की कथावस्तु के रुप में लिया है । 'तीन पहाड़' तीन सदमों के प्रतीक हैं । उपन्यास का प्रारंभ ही प्रतीकारात्मकता को दर्शाता है -

---

1. यारों के यार - कृष्णा सोबती
2. वही

"साँझ की उदास-उदास बाँहे अँधियारे से आ लिपटीं । मोहभरी अलसाई आँखे झूक-झूक आई और हरियाली के बिखरे आँचल में पत्थरों के पहाड़ उभर आए । चौंकार तपन ने बाहर झाँका । परछाई का-सा सुना स्टेशन, दूर जाती रेल की पटरियाँ और सिर डाले के पेड़ों के काले उदास और झटका खा गाड़ी प्लॅटफॉर्म पर आ रुकी ।"[1]

मायुस और खालीपन से भरा अवसाद पूर्ण वातावरण कथा को और नायिका जया के जीवन को भली-भाँति स्पष्ट करता है, जो प्रेम की विफलता में उदास और निराश दिखाई दैती है ।

पहला पहाड़ है - श्री दा की माँ को जया बचपन से पहचानती है । जया और श्री बड़े होने पर एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं । श्री के विदेश जाने से पहले ही उनकी माँ जया को श्री से विवाह करने की अनुमति मिल जाती है, तय भी होता है "कानु, तेरे लिए लड़की को विदा देने के दु:ख से तो छुट्टी हो गई पर सास बनने का मेरा एकमात्र अधिकार तो सदा को छिन गया ।"[2]

परंतु श्री विवाह तय होने के बावजुद भी मुकर जाता है और विदेशी लड़की एड़ना से विवाह करके लौटता है । यह खबर सुनकर जया दु:खी होती है । निराश और उदास हुई जया अपने पहले प्यार में ही असफल होती है और दार्जिलिंग चली जाती है ।

दूसरा पहाड़ है - जया का बचपन और उसके बाद का जीवन जो श्री दा की माँ के पास गुजरता है । जया और श्री का प्रेम तथा श्री की माँ के द्वारा उनका विवाह तय कर देना "आ, बेटी ! देख सकू, जिसने बचपन में ही घौल-घप्पे से तुम पर अफना अंकुश जमाया था, उसी ने आज तुम्हारे वर का नाम भी चुरा लिया है ।"[3] श्री विदेश जाता है और शादी करके ही लौटता है । क्योंकि जया ने पहले पुत्री के रुप में अपने आपको देखा है औऱ बाद में उसी घर में पुत्रवधू के रुप में जाना देखती है तथा अपना समझती है । श्री के विवाहोपरान्त अपनी उपस्थिति के प्रति शंकाकुल होना अर्थात् निराधार होने का भाव निर्माण होता है । जया अकेलापन महसूस करती है और घर छोड़कर दार्जिलिंग चली जाती है ।

---

[1] तीन पहाड़ - कृष्णा सोबती, पृ.71
[2] तीन पहाड़ - कृष्णा सोबती, पृ.115
[3] तीन पहाड़ - कृष्णा सोबती, पृ.115

तीसरा पहाड़ है - दार्जिलिंग में तपन से जया की भेट होती है । तपन जया को सारे कामों में सहायता करता है उसकी चिंता करता रहता है । दोनों हरदम एकसाथ रहते हैं । दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं । किंतु जया श्री को नहीं भूलती उसकी याद में तपन के प्रति विशेष लगाव निर्माण हो चुका है फिर भी उसके मन में श्री की यादें आती रहती हैं । एक बार तपन जया को अपने बाहों के अलिंगन में लेता है और प्रेम रस में भीगी जया को एक लहर की तरह श्री को याद आती है और तपन से कहती हैं "याद जो सामने आ राह ले उसे अनसुनी कर आगे जाना अच्छा नहीं ।"[1]

जया और तपन टहलते रौंस की होटल में चले जाते है और वहाँ पर श्री दा और एड़ना जया से मिल जाते हैं । श्री जया को समझाने की कोशिश करता हुआ माफी मांगता है और वापस अपने घर आने के लिए कहता है परंतु जया समझती नहीं । असमंजस में पड़ी जया श्री सुर तपन को लेकर उलझन में पड़ती है । वह श्री को भूली भी नहीं तथा दूसरी ओर श्री द्वारा तपन का अनादर होता देखकर जजबात में आकार एकदम कड़ककर बोलती है -"श्री दा आज जो मेरे सबसे अपने है, उन्हीं का अनादार करेंगे ।"[2]

जया तपन को चाहती है और उससे जुड़ना भी निश्चित करती है । लेकिन तपन का पुतुल से संबंध जानकर टूट जाती है । इससे अपने कटू अनुभव के जीवन को निरर्थक मानती है । परंतु जया के सामने भविष्य को लेकर तपन की आकुलता है, उनका अपनासा बनानेवाला सहाचर्य है और यह सब उन्हें जीवन के लिए काफी नहीं है । उसके जीवन में आना और तपन द्वारा जीवन जीने की लालसा निर्माण करना इसलिए वह तपन के अहसान को नहीं भूल सकती - "जितने कोस आप उन्हें उठाए रहे है, उतने जन्मों में भी इसका ऋण लौटा नहीं पाऊँगी ।"[3] जया दुविधा में पड़ जाती है । वह एक को थोड़कर दूसरे से जुड़ना नहीं चाहती । जया न श्री को भूल सकती है न तपन से जुड़ सकती है । अतं में वह अपने जीवन से ऊबकर जीवन को मिटा लेती है - "रात की निलाई आकाश के पानी काँपती रही और डूबते सूरज की अंतिम लौ धरती और आकाश की देहरी फलाँक कही अज्ञात हो गई ।"[4]

---

[1] तीन पहाड़ - कृष्णा सोबती
[2] वही
[3] वही
[4] वही

जया के अवसादपूर्ण जीवन से पता चलता है कि गलत का प्रतिरोध और पुरुष के बिना जीवन न जीने का विश्वास न वह जजबात के असफल पलों में से निकलकर कठिन निर्णय ले पायी है । क्योंकि वह प्रेम की विफलता, विगत के आधार पर जीवन यापन नहीं कर सकती और भविष्य में जीना है तो आगे बढ़ना ही होगा । अपितु वह अपने अंदर आत्मबल निर्माण नहीं कर पायी अर्थात जया अपने वजूद को निर्माण नहीं कर पायी ।

1.2.5 सूरज मुखी अंधेरे के

सन् 1972 में प्रकाशित 'सूरजमुखी अंधेरे के 'उपन्यास कृष्णाजी का सुप्रसिद्ध उपन्यास है । यह एक नारी प्रधान एवं मनोवैज्ञानिक कोटि में आनेवाला उपन्यास है । इसमें हीनता ग्रंथी से पिड़ित नायिका का चित्रण है और नारी मन का विश्लेषण है । 'सूरजमुखी अंधेरे के' में विज्ञान की रहस्यपूर्ण बातों को सहज स्वाभाविक रुप से प्रस्तुत किया गया है । इस उपन्यास का कथ्य आधुनिक परिवेश पर आधारित है ।

इस उपन्यास को नायिका 'रत्ती' बाल्यकाल में ही बलात्कार की शिकार होती है । इस घटना से रति के जीवन को कड़ा बना दिया है । वह चारों ओर निराशा और उपेक्षा झेलकर बड़ी होती है । इसमें कृष्णाजी ने बाल्यकाल में निर्मित मन की यौन ग्रंथी ती भविष्य में जटिल दुष्परिणामों में विकसित होते दिखाया है । नारी के अंतर्मन संवेदना की तीव्रतर अभिव्यक्ति दी है । लेखिका खुद स्त्री है इसलिए नारी मन की अनुभूति, वेदना, पीड़ा का स्वाभाविक रुप व्यक्त कर सकी है । प्रकाशक ने स्वयं इस उपन्यास के आवरण पृष्ठ पर लिखा है -"आधुनिकता भावबोध की पीड़िका पर मनोविज्ञान की गूढ़तम पहेलियों को सादगी से आँक सोबती ने एक ऐसे माध्यम और शिल्प की स्थापना की है जो एक साथ परंपरागत शिल्प और मूल्यों को चुनौती दे ।"[1]

इस उपन्यास के संदर्भ में लेखिका गहन संवेदना के माध्यम से कलाकार की तीसरी आँख से पर्तत-दर-पर्त तन-मन की साँवली प्यार को उकेरा है । इसके बारे में कृष्णाजी ने लिखा है -"इस उपन्यास में एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसके फटें बचपन ने उसके सहज भोलेपन को असमय चाक कर दिया है और उसके तन-मन के गिर्द दुश्मनी की कटीली बाड़ खींच दी । ... अंदर और बाहर

1. सूरजमुखी अंधेरे के - कृष्णा सोबती, आवरण पृष्ठ

की दोहरी दुश्मनी में जकड़ी रत्ती की लड़ाई मानवीय मन की नितांत उलझी हुई चाहत और जीवन भरे संघर्ष का दस्तावेज है । ... आदर्शों की भव्यता से अलग हटकर 'सूरजमुखी अंधेरे के' यथार्थ और सत्य के निरुपण की वह असाधारण सत्यकथा है जिसका सत्य कभी मरता नहीं ।"[1]

'रत्ती' का जीवन अभिशप्त हो जाता है, स्कूल के लड़के उसे बुरी लड़की कहते है । वह चिढ़कर उनको मारती है । समय बीतने के साथ वह खुद कहती है - "चाहा कोई एक चेहरा, एक नाम याद कर किसी को पुकार सके, पर चेहरों की भीड़ जैसे 'फोकस' के बाहर हो गई और वक्त का धब्बा बनकर आँखों के सामने टँगी रही ।"[2]

'रत्ती' अंदर से आहत होकर खुद को असुरक्षित मानकर बाह्य रुप से कठोर बन जाती है । वह दुनिया में ही अपना सारा जीवन बीताती है । वह अपने अंदर ही अंदर संघर्ष करती है और घुटन महसुस करती है । रत्ती बाह्य रुप से किसी का विरोध करना नहीं चाहती । रत्ती पर बचपन में हुए बलात्कार की वजह से किसी का विरोध करना नहीं चाहती । रत्ती पर बचपन की वजह से मानसिक छल को झेलना पड़ता है । वह जलील होकर बदले की भावना से कहती हैं -"किसी से कुछ कहती नहीं हूँ पर याद रखना अब छेड़छाड़ की तो छोडूँगी नहीं समझे ।"[3]

'रत्ती' सतत मानसिक परेशानी को महसूस करते हुए एक आम जीवन व्यतित करती है । उसे अपना जीवन बेमतलब-सा लगता है । वह पूरी तरह खालीपन को महसूस करती है और चिंता उन्हें सताती रहती है । दरअसल वह यौन-संबंधों के लिए मानसिक रुप से तैयार है परंतु शारीरिक रुप से भय अनुभव करती है । जगतधर, रोहित, बाली, राजन, ओमी, सुमेर, ड़ेविड़, भानुराव, सुब्रमण्यम् के. शी. श्रीपत अनेक पुरुष उनके जीवन में आते हैं । किंतु वह अपने आपको किसी को सौंप नहीं पाती । एक जगह रत्ती कहती है -"इतनी कडवाहट का मैं क्या करुँगी ? मेरे पास तो जहर ही जहर जमा है ।"[4]

'रत्ती' की मानसिक परेशानी की शारीरिक अभिव्यक्ति की व्याख्या है, उसका ठंड़ापन इसलिए कोई उसे ठंड़ी मनहूस कहता है तो कोई 'पूरीली अहिल्या' को कोई उसके स्त्रीत्व पर शक करता

---

[1] सूरजमुखी अंधेरे के - कृष्णा सोबती, आवरण पृष्ठ
[2] वही
[3] वही
[4] वही

है । वह श्रीपत के साथ जीवन व्यतीत करना चाहती है । लेकिन अपने आपको अलग महसूस करती है ।

आखरी में रत्ती के जीवन में दिवाकर का आगमन होता है । दिवाकर रत्ती की पिछली बातों को भूलाने के लिए भरसक प्रयास करता है और उसमें उसे बहुत सारी सफलता भी प्राप्त होती है । इसके साथ ही दिवाकर रत्ती का हौसला बढ़ाता है अर्थात् उसके आंतरिक शक्ति या मनोबल को बढ़ाता है । रत्ती कहती है -"पहले कभी नहीं । तुमने मेरा शाम धो दिया है दिवाकर ।"[1]

दिवाकर की वजह से रत्ती को जो आनंद मिलता है उसे पाकर वह अपने-आप को परिपूर्ण और सुरक्षित महसूस करती है । महत्वपूर्ण समझने लगती है । वह खुद को पूरी औरत महसूस करती है । यह सब दिवाकर का जादू है । दिवाकर अन्य पुरुष की तरह उसे वस्तु नहीं मानता, अपनी सहचारिणी मानता है - "हाँ ! रक्तिका, जुम जो हो वह मेरी स्त्री नहीं, तुम वह भी नहीं जिसे तुम पीछे छोड़ आई हो । मेरी यह रत्ती, स्त्री का टुकड़ा है, जो इस क्षण मेरे पास है ।"[2]

अंत में संपूर्ण उपन्यास को देखने से मालूम होता है कि रत्ती के अतीत ने उसके जीवन को दागदार बना दिया है । इसलिए अपने-आपसे संघर्ष करती है और डट़कर पुरुषों का सामना करती है । उनका जीवनानुभव मन के दोनों पक्षों से लड़ती है और जीना चाहती है । उपन्यास का संपूर्ण ढ़ाँचा तीन हिस्सो में विभाजित किया गया है - पुल, सुरंग और आकाश । तीनों हिस्से उपन्यास की नायिका रत्ती के जीवन में आनेवाली स्थितियों के परिचायक हैं ।

प्रथम हिस्सा पुल में रत्ती बलात्कारी का कलंकित जीवन पाती है । इसमें उसे अंधकारमय रास्ता पार करने के लिए पुल-सा सहारा मिलता है ।

दूसरों हिस्सा 'सुरंग' में रत्ती के अधंकारमय भूत और वर्तमान का पीड़ामय जीवन सुरंग जैसा होता है । उसे प्राप्त ठंड़ापन मन के बाहर और अंदर से झकझोर देता है ।

तीसरी हिस्सा 'आकाश' में यातमामय जीवन में प्राप्त अनुभवों के सहारे आगे बढ़ती है और दिवाकर के द्वारा मिला सहाचर्य उसे परिपूर्णता का अहसास करता है ।

---

[1] सूरजमुखी अंधेरे के - कृष्णा सोबती, आवरण पृ.

[2] सूरजमुखी अंधेरे के - कृष्णा सोबती, आवरण पृ.

रत्ती अकेलेपन से सिकड़ी हुई नारी है । अपने आपको मजबूत, निड़र और बहादूर मानती है । उसके पास यादों के अलावा कुछ नहीं है; उसे असफलताओं के घोर अंधेरे से निकलकर आशाओं के सूरजमुखी उगाने है । इसके लिए लेखिका के शब्द बड़े सार्थक एवं उचित लगते हैं -

"सिर्फ आकाश -

आकाश में घरौंदे नहीं बनते

आकाश में धरती से फूल नहीं खिलते

नहीं उगते, बस नहीं उगते

उगते ही नहीं ।"[1]

1.2.6 जिंदगीनामा

जिंदगीनामा कृष्णाजी सोबती का सबसे प्रौढ सशक्त एवं साहित्यिक दृष्टि से चरम उपलब्धिवाला उपन्यास है । 'जिंदगीनामा' सन् 1979 में प्रकाशित हुआ और सन् 1980 को 'केंद्रीय साहित्य अकादमी' का पुरस्कार प्राप्त हुआ है । इसी उपन्यास से कृष्णाजी का नाम हिंदी साहित्य जगत् में लब्धप्रतिष्ठित हुआ है ।

'जिंदगीनामा' की कथावस्तु के बारे में प्रकाशक ने उपन्यास के आवरण पृष्ठ पर स्पष्ट शब्दों में कहा है -"जिंदगीनामा का कथानक खेतों की तरह फैला, सीधा-सादा और धरती से जुड़ा हुआ है । जिंदगीनामा की मज़लिसें भारतीय गाव की उस जीवंत परंपरा में है जहाँ भारतीय मानस का जीवन दर्शन अपनी सहायता में जीता चला जाता हैं ।"[2]

'ज़िदगीनामा' पंजाब की जनता और भूमि एवं संस्कृति की जीवंत कथा को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है । कृष्णाजी ने पंजाब की जिंदगी, संस्कृति अर्थात् लोकजीवन, तीज-त्योहार, गीत-नृत्य, खान-पान, वेशभुषा, एश्वर्य, खेत-खलियान नदी-नाले और उसमें रहनेवाले युवा-वर्ग की चमक-दमक को आकर्षण एवं अनुरागपूर्ण ढंग से अंकित किया है । 'जिंदगीनामा' का मूल विषय

---

[1] सूरजमुखी अंधेरे के - कृष्णा सोबती

[2] ज़िदगीनामा - कृष्णा सोबती, आवरण पृष्ठ

लेखिका ने उपन्यास के आरंभ में काव्यात्मक रुप में स्पष्ट किया है । जिसमें स्वातंत्र्यपूर्व पंजाब के ग्रामिण परिवेश को अत्यंत आत्मीयता से व्यापक शब्दों में वर्णित किया है । जिंदगीनामा की मूल विषयवस्तु को लेकर डॉ. सुलोचना अंतरेड्डी ने प्रथम संस्करण के जिल्द से कहा है -

"औकात न कलम की

न लेख की

न लेखन की,

जिंदगी खुद-ब-खुद

फैलती चली गई,

कागजों के पन्नों पर

कुछ इस तरह

जो धरती भी उग आयी है । गहरी जड़ीवाला

विशाल जिंदा रुख ।"[1]

भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन में पंजाब का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । स्वातंत्र्य संग्राम में सबसे ज्यादा कुर्बानियाँ पंजाब के लोगों ने दी है । इस क्रांतिकारी संग्राम के अतीत को वहाँ के ग्रामीण लोगों के जीवन से जोड़ने की कोशिश कृष्णाजी ने 'जिंदगीनामा' उपन्यास में बड़े ही भावात्मक रुप में कुशलतापूर्वक की है । उपन्यास के पूर्व या आरंभ में लिखा हैं -

"इतिहास / जो नहीं है

और इतिहास / जो है

वहीं नहीं

जो हुकूमतों की

तख्तगाहों में

[1] कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी जीवन - डॉ. सुलोचना अंतरेड्डी

प्रमाणों और सबुतों के साथ

ऐतिहासिक खातों में दर्ज कर

सुरक्षित कर दिया जाता है,

बल्कि वह

जो लोकमानस की

भगीरथी के साथ-साथ

बहता है

पनपता और फैलता है

और जनसामान्य के

सांस्कृतिक पुख्तापन में

जिंदा रहता है ।"[1]

पंजाब के लोग लोककथाओं में विश्वास करते हैं । यह लोग दलबदल और जातिवाद आदि के कारण झगड़ते हैं और उसके परिणाम भी भोगते हैं । उसकी वजह से ग्रामिण जीवन में असंतोष, अशांति, बिगड़ी अर्थव्यवस्था तथा द्वेष, घृणा, प्रतिशोध आदि भाव उनमें प्रबल नजर आते हैं ।

'जिंदगीनामा' की वजह से कृष्णा सोबती का आँचलिक उपन्यासों की परंपरा में उल्लेखनीय योगदान माना जाता है । वह खुद पंजाब अंचल से अत्थी तरह से परिचित है । इसलिए उन्होंने प्रस्तुत रचना में कहाँ की सामाजिक, आर्थिक समस्या, रुढ़ियों, रीति-रिवाजों, लोकगीतों, कथओं आदि का सुक्ष्म चित्रण कर युगानुरुप समस्याओं को सुलझाया है ।

इसमें उन्होंने गलत रुढ़ियों व अंधविश्वास, आडंबरों का खंड़नकर आधुनिक विचार प्रस्तुत किये हैं । लेखिका ने अपने उद्देश्य को सफलता पूर्वक स्पष्ट किया है ।

---

1. जिंदगीनामा - कृष्णा सोबती, प्राक्कथन से

उपन्यास का आरंभ और अंत गुरु गोविंदसिंह की अमृत वाणी से होता है । शाहजी इस वाणी को स्पष्ट करते हैं । बादशाहों, दशम पातशाही गुरु गोविंदसिंहजी ने मुगल बादशाह औरंगजेब के जोर-जुल्म को देखकर उसे खत में लिखा था -

"चूँ कार अज हमाँ हीलते दर गुज़श्त ।

हलालस्त बुर्दन ब - शमशीर दश्त ।।"[1]

अर्थात् जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हो सके तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठा लेना जायज है ।

'जिंदगीनामा' के द्वारा कृष्णा सोबती ने अतीत की गद्गद स्मृतियों, जीने की ललक, जीवन के प्रति आस्था, तथा इतिहास व संस्कृति के संगम को यादों के फ्रेम में जुड़े अद्भूत शब्दचित्र खींचकर कवयित्री, लेखिका का तीव्र भावोच्छवास प्रस्फटित हुआ है । इसलिए डॉ. रोहिणी ने ठीक ही कहा है - "जिंदगीनामा कृष्णा सोबती की औपन्यासिक कृति ही नहीं मानस-पुत्री भी है । जिसके बारे में सतत सोचना, बोलना, बतियाना, उन्हें गद्गदाता है, भीतर तक तृप्त करता है, किसी भी एक सामान्य माँ की तरह ।"[2]

1.2.7 ऐ लड़की -

कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की' को लंबी कहानी माना जाता है । इसका प्रकाशन सन् 1991 में हुआ है ।

इसमें मृत्युशैय्या पर पड़ी एक बिमार बुढ़ी माँ अपनी बेटी को अपने जीवन के प्रदीर्घ अनुभूतियों, संवेदनाओं के प्रतिबिंबों को स्मृतियों के रुप में सुनाती है । उसमें अपने हर्ष-विषाद के अतीत के विविध क्षणों की स्वर्णिम यादों में डूब जाती है । वह मृत्यु से बिल्कुल नहीं ड़रती है । वह अपने अंतिम समय में भी जीवन से भरपूर प्यार करती है । 'ऐ लड़की' में लेखिका के जीवन का वास्तविक अंश अर्थात् आत्मानुभव दिखाई देता है । जब कृष्णाजी की माँ अपने अंतिम दिनों में

---

1. जिंदगीनामा - कृष्णा सोबती
2. वही

अस्पताल में पड़ी थी और दोहराती थी कि 'यह प्रकाश जलता रहेगा । लेखिका कहती है कि यह वाक्य 'ऐ लड़की' लिखने की प्रेरणा बना है ।

'ऐ लड़की' के प्रकाशक ने उसके आवरण पर लिखा है -"यह कथा आपकी स्मृति में पूरी तरह डूबी स्त्री जगत् को छोड़ते हुए अपनी बेटी को दिया निर्मोह उपहार है ।"[1] प्रस्तुत उपन्यास माँ-बेटी के बीच के संवाद ही नहीं बल्कि समग्र नारी जीवन पर केंद्रित है । यह नारी की और खासकर आधुनिक नारी की धिरे से बदलती जीवन कहानी है ।

उपन्यास का मुख्य पात्र 'अम्मु' है । उसकी बेटी चित्रा और सूसन एक साथ है । बूढ़ी माँ अपनी सबसे छोटी बेटी के विवाह के प्रति तटस्थता और नीरसता को देखकर उसके अनिश्चित भविष्य को लेकर चिंतित है । बेटी को जीवन व जगत को यथार्थता मातृत्व की महिमा और नारी का स्वयं का अस्तित्व आदि को समझते हुए जीवन के अनेक विध बातों पर प्रकाश ड़ालती है । अपने जीवन के अतीत की संपूर्ण घटनाओं को स्मृति के आधार पर दोहराती है । यह सब अपनी छोटी बेटी को देकर अंतिम समय में हल्कापन महसूस करती है । वह अपने व्यतीत जीवन में पश्चाताप अनुभव करती है । यह कथा निर्भय जिजीविषा का महाकाव्य है । उसमें सहज स्वीकार उसकी विडंबना और ट्रेजीकॉमिक अवस्थिति का पूरा और तीखा अवसाद है ।

'ऐ लड़की' के मुख्य पात्र नारी है । नारी की जीवन स्थिति और उलझनों से नारी का महत्व मान्य किया गया है । नारी में ही नयी प्रेरणा, जागृत और अदम्य शक्ति निर्माण करने की कोशिश की गई है । नारी के अन्य रुपों को चित्रित करने के लिए अम्मु का अतीत ओर वर्तमान प्रमाणभूत माना गया है । अम्मु अपने जीवन में प्राप्त अनुभूतियों के द्वारा बेटी का भविष्य उज्ज्वल बनाने की अपेक्षा पूर्ण करना चाहती है । अम्मु चित्रा के जीवन को एक नया मोड़ देना चाहती है । और उनके जीवन का एकाकीपन दूर कर विवाह के लिए कहती है । कुटुंब में नारी के स्थान और महत्व को विशद करते हुए माँ का रुप सबसे आदर्श और महिमामय है । मातृत्व को लेकर लेखिका अम्मु के द्वारा कहती है 'लड़की बच्चा बनाना एक तरह का यज्ञ है - अरी, इन दिनों औरत पूरे ब्रह्मांड से शक्ति के कण

---

१. 'ऐ लड़की' - कृष्णा सोबती, आवरण पृष्ठ

खींचकर अपनी ऊर्जा ज्वलित कर लेती है । अपने में कुछ विशिष्ट ही जीती है । अपने अंदर का आकाश निरखती है । जीव उत्पन्न करने में उसकी गूँज-गूँज कुदरत से मिली रहती है ।"[1]

अम्मु के पिता अपने घर में लड़कियों के साथ अलग व्यवहार करते थे अर्थात् बेटा-बेटी में भेद करते थे । पहले बेटी पैदा होने पर निराश थे । इसलिए अपनी बेटी को वह लड़की या बेटी की अहमियत से और अपनी स्वरुपा मानकर उसे उत्पन्न करना माँ के लिए महत्त्व का माना है -"अपनी समरुपा करना माँ के लिए बड़ा महत्वकारी होता है, पुण्य है । बेटी पैदा होते ही माँ सदाजीवी हो जाती है । वह कभी नहीं मरती । वह उपज है । कल भी रहेगी माँ से बेटी तक, से उसकी बेटी, उसकी बेटी से भी अगली बेटी । अगली से भी अगली । वही सृष्टि का स्त्रोत है ।"[2]

समस्त नारी जाति की आत्मा और रक्त के गौरव की बात को समझाते हुए अम्मु अपनी पुत्री चित्रा को कहती है -"लड़की, जगत् की आत्मा स्त्री में निवास करती है । शरीर का क्षय होता है, आत्मा का नहीं । पानी सूख जाता है पर रक्त नहीं । बहता रहता है बच्चों के बच्चों में उनके भी बच्चों में ।"[3] माँ बेटी के संबंधों को सृष्टि चक्र की तरह स्पष्ट करती हुई उन्हें विश्वास के साथ कहती हैं सृष्टि के अंत तक वे दोनों हर जन्म माँ-बेटी के रुप में हमेशा मिलती रहेगी । कभी माँ-बेटी तो कभी बेटी माँ के रुप में ... ।

माँ अम्मु अपनी बेटी को जीवन में प्राप्त अनुभूतियों को बेटी के साथ बाँट रही है - "जीवन में न जान कितनी आपदाएँ आती है और न जाने कैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं ? क्या से क्या होता रहता है अर्थात जीवन सिर्फ खुशी में बोलता है ऐसा नहीं है । अपने लिए दु:ख नही मानना । निराश को परे ही रखना । तुम्हारे लिए निश्चित हूँ । न तुम सताई जा सकती हो और न किसी को सताती है । हाँ, सोचकर बताओं की जरुरत पड़ने पर आवाज किसे देगी ।"[३]

बेटी चित्रा माँ अम्मु से माँ की महिमा के बाद पिता के महत्व के बारे में पूछती है तो अम्मु पिता के महत्व को स्पष्ट करती हुई कहती है -"इन्सान के बच्चों में दौड़ता है लहू पिताओं का ही । पिता

---

१. 'ऐ लड़की' - कृष्णा सोबती, आवरण पृ.
2. वही
3. वही

की तो बड़ी स्तुति । देवी तमसा का भगत । परिवार की ज्योति । उसी के वरदान से जलती है । कुदरत का नियम देखो । पिता को सत्य का सामर्थ्य मनुष्य का अंश प्रदान करने की ।"[1]

'ऐ लड़की' में लेखिका ने अपने व्यतीत जीवन में जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया है, उसको ही उन्होंने आत्मानुभूति को प्रस्तुत करने के लिए गद्य भाषा का आधार लिया है । प्रकाशक ने आवरण पृष्ठ पर बहुत ही सरल और सार्थक शब्दों में उपन्यास के संदर्भ में लिखा है - "कोई भी कृति सबसे पहले और सबसे अंत में ही रहती है । उसी में उसका सच्चा मिलता चरितार्थ होता है और विलीन होता है । कथा भाषा इस कहानी में एक नया उत्कर्ष है । उसमें होने, डूबने, उतराने, गढ़ने, रचने की कविता है, उसमें अपनी हालात देखता-परखता जीवन के अनेक अप्रत्याशित क्षणों को सहेजता और सच्चाई की सख्ती को बखानना गद्य है ।"[2]

उपन्यास के अंत में यह अनुभव प्राप्त होता है कि कृष्णाजी सोबती ने पहुत ही छोटे से कलेवर में नारी जीवन की संपूर्ण व्यथा एवं कथा के अस्तित्व एवं महिमा को अपने जीवन रुपी सारांश के माध्यम से हृदयस्पर्शी शब्दों में अंकित किया है । साथ ही मृत्यु को एक परम सत्य और जीवन की अनिवार्य स्थिति के रुप में प्रतिष्ठित कर दिया है - "जैसे मैंने यह ऊपर की चद्दर उतारी है, वैसे ही मेरा बदन उतार दो । तुम पर से मेरा शरीर अलग कर दो । अब और सहा नहीं जाता ।"[3]

1.2.8 दिलो दानिश -

'दिलो दानिश' का प्रकाशन सन् 1993 में हुआ है । अभी इसका अंग्रेजी में ' दि हार्ट हैज इट्स रीजन्स' के नाम से 'रीमा आनंद' ने अनुवाद किया है । इसे सन् 2005 को 'क्रॉसवर्ड बुत अवार्ड़' से नवाजा गया है ।

'दिलो दानिश' का कथानक उन्नीसवीं बीसवीं सदी के दरम्यान की दिल्ली की एक सामंती हवेली और रईस समाज व्यवस्था से बावस्ता, यह सीधी-सादी जवाबदेही इन्सानी रिश्तों 'दिल' अर्थात् 'भावना' और 'दानिश' अर्थात् 'दिमाग' की कथा है । यह कथा पूरानी दिल्ली में बसनेवाले एक संयुक्त परिवार की है । आजादी से पगले हमारे समाज में सामंती पारिवारिक व्यवस्था थी, जिसमें रईसों की

---

[1] 'ऐ लड़की' - कृष्णा सोबती, आवरण पृ.
[2] 'ऐ लड़की' - कृष्णा सोबती, आवरण पृष्ठ
[3] 'ऐ लड़की' - कृष्णा सोबती, पृ.

पत्नी के अलावा दूसरी कई स्त्रियों से संबंध भी मान्य थे । पूरानी दिल्ली में लाल किला, जामा मस्जिद और गौरीशंकर मंदिर की छाँह में खड़ी हवेली का नायक कृपानारायण उपन्यास का मुख्य पात्र है । वह खानदान का एकमात्र कमानेवाला है । माँ, पत्नी और दो पुत्रों के अलाबा उनकी छत्र-छाया में कई परिवार रहते है । उनकी पत्नी कुटूंबप्यारी घर की स्वामिनी है । शादी के कुछ सालों बाद कृपानारायण की पत्नी कुटूंबप्यारी को समझता है कि वकील साहब एक मुसलमानी नृत्यांगना से प्यार करते है । उनके दो बच्चे भी है । उपन्यास का सारा कथानक दोनों औरतों के बीच द्वंद्व और दम घुटचे वकील का आत्मसंघर्ष और दोनों औरतों तथा उनके बच्चों की परवरिश जिस नेकनियति से करता है आदि के इर्द-गिर्द घूमता नजर आता है ।

1.2.9 समय-समय -

कृष्णा सोबती का यह उपन्यास सन् 2000 में प्रकाशित हुआ है । 'समय-सरगम' में सयाने या वृध्द व्यक्तियों की जिजीविषा को मर्मांतक शब्दों में तटस्थ रहकर प्रस्तुत किया है । जिन्होंने इस समाज के बनाने में अपनी जिंदगी लगा दी है, उन्हें ही कई समस्याओं से जूझना पड़ रहा है । वैश्विकरण को इस युग में बुजुर्गों को महत्व नहीं दिया जा रहा है, जिससे पारिवारिक उपेक्षा, अकेलापन, उदासीनता, असुरक्षितता और सामाजिक संकट सामने आ रहे हैं । कृष्णाजी ने 'समय-सरगम' में इसी पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को अंकित किया है - "पूरानी और नई सदी के दो-दो छोरों को समेटता समय-सरगम जीए हुए अनुभव की तटथता और समादिक परिवर्तन से उभरा, उपजा अनुठा उपन्यास है और फिर भारत की बुजुर्ग पीढ़ियों का एक ही साथ नया-पूराना आख्यान और प्रत्याख्यान । संयुक्त परिवारों के भीतर और बाहर वरिष्ठ नागरिकों के प्रति उपेक्षा और उदासिनता 'समय-सरगम' की बंदिश में अतर्निहित है ।"[1]

'समय-सरगम' की नायिका अरण्या मृत्यु-भय से आंतकित नहीं है बल्कि जीवन के अंतिम पड़ाव को सहज स्वीकार करती है और जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखकर जी रही है । जीवन के आखरी पड़ाव में मृत्यु-भय तथा पारिवारिक, सामाजिक उपेक्षा को झेलते हुए उदासी, अकेलापन और अविश्वास का सामना करती है । लेखिका का विश्वास मानव की अमरता में है । व्यक्ति जी जीकर

1.समय सरगम - कृष्णा सोबती, आवरण पृष्ठ

मरता है और मर मरकर जीता है । वस्तुत अनंत मे विलिन होने तक पल-पल की उत्कंठा और उत्साह का भाव ही 'समय-सरगम' के मूल कथ्य को गति प्रदान करता है -"अंतहीन है जन्म और मरण । हम जी जीकर मरते है और मर मरकर जीते है । दुबारा शुरुआत करने को, फिर जन्म लेने को जी उठते हैं ।"[1]

उपन्यास की प्रमुख पात्र अरण्या पेशे से लेखिका है और उन्होंने अकेले रहने का निर्णय खुद किया है । अरण्या जिस अपार्टमेंट में रहती है वही ईशान भी रहता है । ईशान भी अकेलेपन की जिंदगी जी रहे है । अरण्या का पारिवारिक जीवन शांत है, वह अविवाहित है । कभी कभी पिता की यादे उन्हें पारिवारीक बनाती है । ईशान नितांत भाग्यवादी एवं नियतिवादी अवकाश प्राप्त आला अफसर है । ईशान अपने-आपको हमेशा व्यस्त रखते हुए स्वस्थ रहने का प्रयास करते हैं । कभी-कभी बेटे की स्मृतियों मे खो जात है । ईशान भारतीय दर्शन में रुचि रखते हैं । अरण्या लगभग सत्तर की अवस्था में भी स्वावलंबी जीवन जी रही है । उसकी दिनचर्या में दूरदर्शन देखना, टेपरिकार्डर पर कैसेट सुनना अवश्य रहता है । बारिश में छाता लेकर घूमना, होचल में डिनर लेना आदि में उनका उत्साह बना हुआ है । अरण्या और ईशान दोनों परस्पर विरोधी विश्वास के होते हुए भी मैत्री-भाव रखते हैं । उपन्यासकार का यह विचार है कि व्यक्ति मन से जवान रहा तो शरीर भी साथ देता है । अरण्या और ईशान में यह बात समान रुप से दिखाई देती है । वे दोनों मृत्यु से भयभीत नहीं हैं । दोनों एक-दूसरे के नजदीक आ जाते है और परस्पर की निजता में हस्तक्षेप न करते हुए साहचर्य का लुत्फ उठाते है, आनंद लेते हैं ।

दोनों सयाने परस्पर प्रेम करने लगते हैं । अरण्या फ्लैट बेचकर अपनी दोस्त के यहाँ रहने की बात ईशान से करती हैं । ईशान फौरन उसे अपने फ्लैट में रहने की पेशकश करते है । इत्तिफ़ाक से दोनों की जन्मतिथि एक साथ मिल जाती है । अरण्या ईशान की पेशकश को स्वीकर कर लेती है । यह तकाजा था मैत्री-भाव और पके हुए प्रेम का । दोनों नजदीक आते हैं, साहचर्य होता है, अरण्या को एहसास होता है - "असमय ही यह अनबुझी समय-सरगम । लगता है दोस्त याने किसी पूरानी जी हुई दुनिया की अभ्यस्त यादों के बहाने अपने-अपने देह, मन, प्राण और आत्मा में छिपे पूराने पात्रों को जी रहे हैं, अलग-अलग और साथ-साथ ।"[2]

---

1. समय सरगम - कृष्णा सोबती, आवरण पृ.
2. वही

अरण्या की समस्या या संकट है कि वह जीवन भर अकेले जीती है । और यह उनका अपना निर्णय था । अरण्या आस्तित्ववादी है । परंतु, जीवन के अंतिम पड़ाव में क्यो न हो ईशान जैसे विधुर का सहारा लेना पड़ता है । लिहाजा उसे एक अद्द पुरुष अंततः चाहिए ही । सौभाग्य से मिले जन्म और संयोग से जीवन के मोड़ पर मिल गये हैं हम-तुम । तब ईशान अरण्या को कहते हैं कौन कितना सुखी है और कितना दुःखी है । हम इससे भी अलग है- "मैं अपने से क्या अपेक्षा करता हूँ, और तुम से क्या ? क्या बना सकती हो कि तुम इन दिनों अपने से क्या उम्मीद करती हो ।"[1]

अरण्या अत्यंत सूक्ष्म और सघन व्यक्तित्व की स्त्री है । ईशान और अरण्या का वैचारिक सरगम सामजंस्य नहीं होता परंतु उनके दिल एक-दूसरे के पास होते है । अरण्या को ईशान से ज्यादा तलब चाय की होती है । संपूर्ण उपन्यास में चाय, नाश्ता, डिनर, सुबह-शाम सैर-सपाटा करने का आनंद, लंबी बहसें आदि चीज़ो का अदान-प्रदान । अरण्या का बुढ़ापे का जीवन हमेशा हरा-भरा दिखाई देता है । उपन्यास के अन्य पात्र दमयंती और कामिनी आदि सबको बुढ़ापे ने घेर लिया है पर अरण्या किसी युवा से कम नहीं समझती । उसका चलना, बोलना, रहना, पहनावा, हाव-भाव एकदम युवाओं जैसे ही हैं । वह किसी बात पर जवान लड़कियों की तरह खिलखिलाकर हँसती है ।

ईशान के जन्मदिन के सुअवसर पर भेंट दिए गए केक का नौकर द्वारा निरादर करने से वह बहुत आहत होती है । वह ईशान की कोई सफाई नहीं मानती है । उसे लगता है कि जिंदगी में मेरी नियति केक की तरह ही है जैसे नोकर द्वारा कुडेदान में फेक दिया गया है । औरत की उस स्थिति को वह कतई स्वीकार नहीं करती है । उसके लिए उसे अपना प्रेम क्यों न भूलना पड़े ।

'समय-सरगम' में कृष्णाजी ने बुजुर्गों की दुनिया में मस्ती के साथ ऐसे अनेक मनोभाव को सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की है, जिससे हमारा युवा वर्ग बेखबर है । वह प्रायः बुजुर्गों को समझने में गलती कर जाता है । जैसे दमयंती के बच्चे उनके एकांत को अंतिम समय तक समझ नहीं पाते ।

मानव कुछ दिनों तक अकेला जी सकता है किंतु हमेशा नहीं जी सकता । क्योंकि मानव समूह-प्रिय प्राणी है । उसे जीवनसाथी की, सहारे की या साहचर्य की परम आवश्यकता होती है । तभी

---

1. समय सरगम - कृष्णा सोबती

वह एक खुशहाल जीवन जी सकता है । लेखिका ने इसे अरण्या के माध्यम से बहुत ही सुंदर ढ़ंग से प्रस्तुत किया है । युवा वर्ग बुजुर्गों की तरफ एक अलग ही नजर से देखते हैं । इसलिए कृष्णा सोबती जी ने समय-सरगम के माध्यम से बुजुर्गों के जीवन की अनेकविध समस्याओं की ओर इशारा करते हुए इसे समाज के सामने बडे सुंदर शब्दों में कुशलतापूर्वक रखा है ।

1.2.2 कहानी संग्रह - बादलों के घेरे

यह कृष्णा सोबती की प्रथम रचना है । इसमें सन् 1944 से 1959 तक के पंद्रह वर्षों के दरम्यान आपकी कुल 24 कहानियाँ लिखी हैं । जिसमें से अधिकतर सन् 1953 से 1964 के बीच लिखी गई हैं । यह सारी कहान्नियाँ 'सोबती एक सोहबत' में संकलित एवं प्रकाशित हैं । इन कहानियों को विशेष रुप से तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं -

1. देश विभाजन से संबंधित कहानियाँ,
2. ग्रामीण जीवन से संबंधित कहानियाँ,
3. प्रेम और स्त्री-पुरुष संबंधित कहानियाँ

1. देश विभाजन से संबंधित कहानियाँ

'सिक्का बदल गया' कहानी सन् 1948 में 'प्रतीक' में प्रकाशित हुई है । यह कृष्णाजी की देश विभाजन से संबंधित सबसे प्रसिध्द एवं बहुचर्चित कहानी है । इसमें विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों के मार्मिक चित्रण के साथ मानवीय संबंधों एवं मूल्यों के विघटन का वर्णन है ।

'मेरी माँ कहाँ है' इस कहानी में ब्लोच रेजिमेंट का बहादूर युनुस-खाँ काफिरों को मारता हुआ घूम रहा है । उन्होंने तबाही देखी है । यह तबाही आग से झूलस रही थी, जिसमें बच्चे, औरतें और मर्द भी थे । वह मानता है कि बिना खून के आजादी नहीं मिलती । युनुस खाँ नई दुनिया का सपना देखता है ।

'खम्माधनी अन्नदाता' कहानी में राजसत्ता, जनसत्ता में बदल जाने पर साधारण लोगों में आपसी दरार पड़ती है । सदियों से एक-साथ रहनेवाले हिंदु-मुसलमानों का देश के बटवारे से कुछ लेना-देना नहीं था । लेकिन विभाजन को लेकर दोनों एक-दूसरे से भावनात्मक रुप से बहुत दूर जा बसे है । विभाजन से त्रस्त हर व्यक्ति इसका साक्षी है ।

2 ग्रामीण जीवन से संबंधित कहान्नियाँ

'दादी अम्मा' नवंबर, 1964 में लिखी कहानी है । यह कहानी ग्रामीण परिवेश से जुड़ी संयुक्त परिवार की समस्याओं को अंकित करती है । यह सास बहु के बिगड़ते रिश्तों की कहानी है ।

'अभी उसी ही दिन ही तो' कहानी में माँ की ममता को अंकित किया गया है । इसमें स्त्री के जीवन में आनेवाले अकेलेपन को व्यक्त किया गया है ।

'बहनें ' कहानी में पारिवारिक जीवन के अनेक मार्मिक यथार्थ दिखाई पड़ते हैं । बड़ी बहन का बेटा धर्म की शादी में तीनों बहने एक अरसे बाद मिलती है । और वह अपने-अपने जीवन को देखकर खुशी और गम को महसूस करती हैं । प्रस्तुत कहानी पारिवारिक जीवन से जुड़ी कहानी है ।

'भोले बादशाह' कहानी अप्रैल 1953 में लिखी है । यह कहानी माँ के पत्र स्नेह और ममता को दर्शानेवाली है । इसमें माँ की ममता और पीड़ा कोई बाँट नहीं सकता आदि को बारिकियों से स्पष्ट किया गया है । उसका बेटा मानसिक रुप से विक्षिप्त है । वह दूसरों के जीवन से अधिक लगाव रखता है और आरोप लगाकर उन्हें बरबाद करता है ।

'गुलाब जल गंड़ेरिया ' कहानी की धन्नो अपने जीवन में पानी और ठंड़क की तलाश में निकल पड़ती है और पाती भी है । धन्नो का पति बाजार में बर्फ बेचता था । उसकी मृत्यु के बाद धन्नो बाजार के कई मर्दों को ठंडक पहुँचाती है ।

'बदली बरस गयी' कहानी में कल्याणी अपने मन के मुताबिक जीवन बिताना चाहती है । कल्याणी के पिता की मृत्यु हो गई है और माँ आश्रम में साधना में ही लीन रहती है । कल्याणी का मन आश्रम में नहीं लगता है । उसकी माँ उसे अपनी राह पर चलने के लिए कहती है, परंतु कल्याणी नहीं मानती ।

'कलगी' में अंग्रेज और सिख्खों के बीच हुई लड़ाई से जुड़ी ग्रामीण परिवेश की कहानी है । यह 'कलगी' पंजाब के माथे की है, जो आज फिर सिख्खों ने अपने हाथ में ले ली है ।

'लामा' यह कृष्णा सोबती की पहली कहानी है । जो सन् 1944 में लिखी है । कृष्णाजी का बचपन शिमला में बीता है । वहाँ लामा बच्चों के आकर्षण का मुख्य अंग था । जिसे वह चिढ़ाते थे ।

नौकरानी के द्वारा उन्हें पता चलता है कि लामा मर गया है । बच्चे इस बात पर विश्वास नहीं करते । लेकिन कई महीने बीत गए लामा की प्रतीक्षा करते रहें, लामा नहीं आए । अब सोबतीजी दिल्ली में रहती है और आज भी भिखारी की आवाज सुनती है तो बाहर आकर देखती है कि शायद लामा ही आया है ।

'नफ़ीसा' एक नन्हीं-सी लड़की है । अम्मी और अब्बा नफ़ीसा को अपनी गोदी से उतारकर अस्पताल के कोने में छोड़ गए हैं । नफ़ीसा की बीमारी और उसकी मानसिक स्थितियों का सच्चा अंकन करते हुए सोबतीजी ने उसके माँ-बाप की पीड़ा को भी सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है । नफ़ीसा अस्पताल में ही दम तोड़ देती है ।

'टीलो ही टीलो' कहानी में बच्चों के खेल और उससे जुड़ी एक दुर्घचना का मार्मिक चित्रण है । परिवार की समस्याएँ, सास-बहु के बिगड़ते रिश्ते, माँ बनने की नारी की लालसा, माँ की ममता, विधवाओं का अकेलापन आदि अनेक मार्मिक यथार्थ तो लेखिका ने अत्यंत स्वाभाविक और गहराई से शब्दबद्ध किया है ।

3 प्रेम ओर स्त्री-पुरुष संबंधों की कहानियाँ -

'बादलो को घेरे' कहानी में रवि और मन्नो का असफल प्रेम अंकित है । मन्नो रवि के प्यार को ठुकराती है, क्योंकि वह तपेदिक बीमारी से पाड़ित है । मन्नो दम तोड़ देती है । वह रवि के लिए बनाई जर्सी छोड़ जाती है । रवि उसी की याद में जीता है, बीमार होकर भुवाली पहुँचता है ।

'कुछ नहीं कोई नहीं' की नायिका शिवा प्रेम के लिए पति व परिवार को नष्ट करती है । पति के मित्र आनंद के साथ शिवा प्रेम करती है । आनंद भी बीच में ही चल बसता है । अब शिवा अकेली रहेती है । शिवा को न प्रेम मिलता है न जिंदगी मिलती है ।

'दोहरी साँझ', 'एक दिन', 'न गुलशन न चमन था' आदि कहानियों में भी असफल प्रेम ही चित्रित है ।

'पहाड़ों के साये तले' कहानी में शुषी के नाम उसकी सहेली द्वारा लिखी गई तीन चिट्ठियों का संकलन है । तीनों चिट्ठियों में अकेलापन महसूस होता है । पहाड़ो की मनोरम पृष्ठभूमि की

विरानगी लेखिका के मन नें सूनापन भर देती है । इसलिए वह सामाजिक जीवन से अलग नितांत अकेलापन अनुभव करती है ।

'बादलों के घेरे' की कहानियाँ लेखिका के साहित्यिक जीवन का पहला पड़ाव मानी जा सकती है । अनुभवों से सहज संप्रेषण और मानवीय जीवन की स्थितियों की गहरी समझ की दृष्टि से उनका विशेष महत्व है ।

1.2.3. कविताएँ -

कृष्णा सोबती ने अपने साहित्यिक जीवन में प्रायः उपन्यास विधा पर ही अधिक ध्यान केंद्रित किया है । इससे यह मालून होता है कि आप की रुचि उपन्यास में ही अधिक दिखाई देती है । कविता के क्षेत्र में बहुत कम लेखनी चलाई है । आपकी निम्नांकित कविताएँ 'सोबती एक सोहबत' नामक किताब में प्रकाशित हुई है -

1. 'प्यारे खास' -

यह कविता 28 जुलाई, 1974 में लिखी है । इस कविता में तथाकथित नेता लोगों पर व्यंग्य किया गया है । नेता की तुलना आम से ही गई है । जैसे फलों में आम खास होता है वैसे जनता में नेता खास बनने की कोशिश करते हैं । सामान्य जनता नेताओं से जीवनावश्यक जरुरतों की अपेक्षा रखती है । परंतु ये सामान्य जरुरतें भी नेता सत्ता प्राप्त करने पर भी पूरा नहीं कर पातें ।

2. 'गहबाँहियों-सी उमड़ती ' -

कविता में पंजाब अंचल की धरती, नदी, खेती, गबरु जवान, बहु-बेटियाँ, बैल, तंदुरी रोटियाँ और खुशियों के साथ-साथ पंजाब के दुर्दिनों का तथा वतन के विभाजन का चित्रण किया गया है ।

1.2.4 संस्मरण -

जब कोई विख्यात व्यक्ति के संबंध में चर्चा करते हुए स्वंय के भी जीवन के किसी अंश को प्रकाश में लाने की चेष्टा करता है, तब संस्मरण का जन्म होता है ।

कृष्णा सोबती ने साहित्यिक जीवन में संस्मरण में ही अधिक मन रमाया है । उपन्यास, कहानियाँ, कविता की अपेक्षा संस्मरणों की तादाद अधिक है । उनके द्वारा लिखे संस्मरणों को निम्नांकित दो भागों में विभाजित किया है -

1. हम हशमत भाग-एक

2. हम हशमत भाग -दो

'हशमत' लेखिका का ही छद्म नाम है । जिसे वे आध्यात्मिक युगल मानती है । जब लेखिका को पुरुष की दृष्टि से जाँचने-परखने की जरुरत पड़ती है तो वह हशमत मियाँ के छद्म भाव में स्वतंत्रतापूर्वक हर सभा में शामिल होती है । हशमत के रुप में अपने समकालिन साहित्यकारों, आलोचकों और संपादकों से मिलती रहती है । 'हम हशमत भाग-दो के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशक ने ठीक ही लिखा है कि - "हम हशमत" हमारे समकालीन जीवन-फलक पर एक लंबे आख्यान का प्रतिबिंब है । इसमें हर चित्र घटना है और चेहरा कथानायक । हशमत की जीवंतता और भाषाई चित्रात्मकता उन्हें कालजयी मुखड़े के स्थापत्य में स्थिर कर देती है ।"[1]

समकालीनों के संस्मरणों के बहाने इस शती पर फैला हिंदी साहित्य समाज अपने-अपने वैचारिक और रचनात्मक विमर्श के साथ उजागर है ।

हम हशमत भाग -एक

प्रथम भाग में जो लेखक गुच्छा प्रस्तुत किया गया है, उसमें निर्मल वर्मा, भिष्ण साहनी, कृष्णदेव वैद्य, अमजद भट्टी, महेंद्र भल्ला, गोविंद मिश्र, मनोहर शाम जोशी, नागार्जुन, शीला संधू, नितीन शेठी, रमेश पटेरिया, सुधीर पंत, मियाँ नसीरुद्दीन और सरदार जग्गासिंह । इसके अलावा दो सम्मेलनों और पार्टियों का भी संस्मरण है । 'हम हशमत भाग-एक' का प्रकाशन सन् 1979 में हुआ । राजकमल प्रकाशन की प्रकाशक शीला संधू से मुलाकात करते हुए लेखिका ने बहुत उचित शब्दों में

---

[1] - हम हशमत भाग-2- कृष्णा सोबती
2 - वही

अंकित किया है कि - "दोस्तों, यूँ तो कोई भी प्रकाशक लेखकों का न सिर्फ दोस्त होता है न दुश्मन । वह लेखक का दोस्त भी है और दुश्मन भी ।"[1]

प्रकाशक, लेखक और किताबों का जो दायित्व होता है, उसको प्रस्तुत करते हुए एक अच्छा लेखक और उसकी कालजयी रचनाएँ अर्थात् किताबे समाज पर कैसे असर करती हैं ? समाज कैसे जवान तथा दिल और दिमान को अमीर बनती है । यही अगर बंद हो जाता है तो सारा समाज ही जवानी खत्म कर देता है -"किताबें भी अपनी जिल्द और रुह से अनोखी लहरें पैदा करती रहती हैं । वहीं लहरें आपसे टकराकर प्यार के से करिश्मे से आपको गुंजान रखती है । वक्त और मौसमों को थामे रखती हैं । अगर आपने उन्हें महसूस करना बंद कर दिया है तो जान रखिए - आपके दिल और दिमाग के जवान दिन खत्म हो चुके ।"[2]

हम हशमत भाग - दो

'हम हशमत भाग - एक' के प्रकाशन के बीस वर्ष बाद सन् 1999 में 'हम हशमत भाग - दो' प्रकाशित हुआ । इसमें हशमत इन महानुभवों से मिलते हैं - नामवर सिंह, अशोक बाजपेयी, उपेंद्रनाथ अश्क, अज्ञेय, श्रीकांत वर्मा, नेमीचंद्र जैन, मंटो, अरविंद कुमार, उमाशंकर जोशी, सत्येन कुमार, मंजूर ऐहतेश्याम, सौमित्र मोहन, स्वदेश दिपक, बलवंत सिंह, राजेंद्र सिंह बेदी, प्रयाग शुक्ल, नासिरा शर्मा, कन्हैयालाल मिश्र और कमलेश्वर इस शताब्दी की प्रमुख हिंदी साहित्यिक हस्तियाँ हैं । हशमत की विशेषता है तटस्थता । अपनी औपचारिक निगाह में दोस्तों के लिए आदर है, जिज्ञासा है, जासूसी नहीं है । इसी बात को प्रकाशक ने आवरण पृष्ठ पर यथायोग्य कथन स्पष्ट किया है कि -"हिंदी के सुधी पाठकों और आलोचकों ने 'हम हशमत' को संस्मरण विधा में मील का पत्थर माना था । 'हम हशमत' की विशेषता तटस्थता है । कृष्णा सोबती के भीतर पुख्तागी से जमें 'हशमत' की सोच और उसके तेवर विलक्षण रुप से एक साथ दिलचस्प और गंभीर हैं । नज़रिया ऐसा कि एक समय को साथ-साथ जीने के रिश्ते को निकटता से देखे और परिचय की दूरी को पाठ की बुनत और बनावट में जज़्ब कर ले । 'हशमत' की औपचारिक निगाह में दोस्तों के लिए आदर है, जिज्ञासा है, जासूसी नहीं यही निष्पक्षता

---

1 - हम हशमत भाग-2- कृष्णा सोबती
2 - वही

नए-पुराने परिचय को धनत्व और लचक देती है और पाठ में साहित्यिक निकटता की दूरी को भी बरकरार रखती है ।"[1]

इन संस्मरणों के बहाने लेखिका कभी साहित्य और समाज से संबंधित आलोचनात्मक विमर्श भी प्रस्तुत करती है । साहित्यकारों से हुई मुलाकतों की संस्मरणों में इनकी रचनाओ की आलोचना करती है ।

1.2.5. अन्य साहित्य -

1. सोबती एक सोहबत -

कृष्णा सोबती की यह संकलित रचना सन् 1989 में प्रकाशित हूई है । इसमें कृष्णाजी की सुप्रसिध्द रचनाओं के चुनिंदा अंक संकलित है । 'मैं और मेरा समय' में संकलित- 'चंद नोट्स जिंदगीनामा पर', 'तब तक कुछ मालुन नहीं था', 'सूरजमुखी अंधेरे के : एक संस्मरण', 'मैं, मेरा रचना संसार' यह चार विचारोत्तेजक निबंध और दौ कविताएँ - 'प्यारे खास' और 'गलबाँहियों सी उमड़ती' प्रकाशित हुई है ।

2. जैनी मेहरबान सिंह (पटकथा) -

इसमें कृष्णाजी ने वैन्कूवर से दूर पिछवाड़े से झाँकते हैं एक-दूसरे वरी दो गाँव पट्टीवाल और आट्टीवाल के कुनबों का एक-दूसरे से तरेरते हुए इनके बीच पड़ी दरारे, जान लेनेवाली दुश्मनियाँ और मारने मरने की कसमें । ऐसे में मेहबानसिंह और कौर साहिब की अल्हड़ कैसे परवान चढ़ती है आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है ।

मेहरबान सिंह ने अपने मुहब्बत की ख़ातिर जान बख्श देने की दोस्ती निभाई और गाँव को पीड़ देकर कैनड़ा जा बसे । नए मुल्क में नई जिंदगी शुरु करते हैं । भारतीय मूल के प्रवासी मेहबान सिंह और उनकी पत्नी लिज़ा की इकलौती संतान सुनहरी बालों वाली जैनी को भरपूर लाड़-चाव और पत्नी लिज़ा को खूब प्यार दिया फिर भी दिल से लगी साहिब कौर की छवि मद्धम पड़ी । जैनी मेहरबान

---

[1] - हम हशमत भाग-2- कृष्णा सोबती

सिंह जिंदगी के रोमांस, उत्साह, उमंग और उजास की पटकथा है, जिसे कृष्णाजी ने गुनगुनी सादगी से प्रस्तुत किया है ।

3. शब्दों के आलोक में -

कृष्णा सोबती की 'शब्दों के आलोक में' सन् 2005 में प्रकाशित एक सशक्त एवं जानदार रचना है । 'शब्दों के आलोक में' एक पूरानी तारीख के नए-पुराने मुखड़ों और कार्यकारी उभरते पाठ के रचनात्मक टुकड़ों की बन्दिश है जिसे एक जिल्द में संजोया गया है । पाठ न नएपन से आक्रान्त है और न पूरानेपन से आंतकित । जीने का एक ऐसा मौसम इसके आर-पार फैला है जो न लेखक की कार्यक्षमताओं पर हावी है और न साहित्यिक मुखौंटों से भयभीत । ट्रैक पर दौड़ते हुए न किसी को पछाड़ने की हसरत और न किसी से पिछड़ने का डर ।

शब्दों के आलोक में इस शीर्षक में ही इतना वजन और सामर्थ्य है कि कोई भी इसको नकार नहीं सकता । क्योंकि शब्द की ताकद या सामर्थ्य एवं गहराई और क्षमता व अर्थ को जो जानता है । शब्दों की महिमा को जाननेवाला, अर्थोचित शब्दों का प्रयोग करनेवाला ही उसकी शक्ति का मर्मज्ञ होता है । वही शब्दों के असर या प्रभाव तथा परिणामों को भी जानता है । इसलिए 'शब्द' को ही 'ब्रह्म' कहा गया है । 'शब्द' की अर्थसत्ता और उसकी अहमियत के बल पर ही दुनियादारी चली आ रही है, चल रही है और चलेगी । 'शब्द' ही चराचर जगत् का सबसे बड़ा प्रमाण है और मानव प्राणी की जीवंतता का आधार भी है । 'शब्द' ही 'भाषा' और 'लोकमानस' का 'प्राण' है । "दोस्तो भाषा इस 'लोक' की जीवंतता का रोमांस है । विचार की उत्तेजना, प्रखरता, गहराई, एकांत की बेआहट को प्यार और न प्यार के द्वंद्वं को, घर-परिवार को, शोर और जंगल के मौन को, मन की खिड़की से टकराते तनावों के पंखों से, हास और उल्लास से, भला क्या है जो भाषा अंकित नहीं कर सकती । भाषा में निहित है प्रकृति और समस्त संसार का संवेदन । ऐसा कुछ भी नहीं जिसे रफ़्तार को थाम लेते हैं, प्रवाह को बांध देते हैं, चीर देते है । जीवन और मरण को शब्दों की सत्ता से माप लेते है ।"[1]

साहित्यकार या साहित्य का सर्जक अपनी आँख से शब्दों के द्वारा 'लोक' का अंतर्बाह्य अवलोकन कर प्रामाणिक अनुभूतियों, स्मृति, विचार और शैली में अपनी कलम से शब्दबद्ध करके

---

1. शब्दों के आलोक में - कृष्णा सोबती

उदारता से उदात्त बनाता है जिसे साहित्य के नाम से पहचाना जाता है । 'साहित्य' शब्द तथा भाषा का निरंतर प्रवाह है और इस आदि और अंत न होनेवाले प्रवाह को प्रवाहित करने का लोक तथा साहित्य का सर्जन करता रहता है । कृष्णा सोबती ने 'शब्दों के आलोक में' संग्रहित एवं प्रकाशित 'सर्जक की आँख' नामक लेख में इस बात को सशक्त शब्दों में अंकित किया है - "आदि और अंत, जन्म और मरण के बीच की अनुभूति का स्पर्श करते हैं । हमारा प्राणवान अंत:करण स्वयं अपना साक्ष्य चुनता है और पाठ को प्रामाणिकता की धार पर चढ़ाकर भाषा की मदद से प्रकाशित करता है । जीवन के सघन और सजग को प्रतिभा से उजागर करता है । अपनी-अपनी निजता में अंदर से बाहर और बाहर से अंदर के कोनों से झाँक उन अंधेरों को प्रवाहित करता है । इस पार से उस पार-फिर मनुष्य की यही परिक्रमा इस लोक में बार-बार । बारम्बार । इसके चलने न आरंभ मात्र आरंभ है, न अंत मात्र अंत है । बस उदार का उदात्त है, जो साहित्य में संचित है ।"[1]

शब्द और अर्थ जमनते ही विवाहित होते हैं । वे दो जिस्म मगर एक जान होते हैं । शब्द और अर्थ की भंगिमाएँ आत्मतत्व को साकार कर देती है । शब्दों की विचार की क्रियाएँ अपनी भाषायी सत्ता में मानवीय अभिव्यक्ति को आगे बढ़ाती है । उनकी अर्थ संगति मन के आंतरिक भाव-अनुभवों और देह धर्म की अस्मिता को अंकित करती है । भाषा का यह स्वाभाविक गुणधर्म है कि गोचर और अगोचर को सशक्त रुप में व्यक्त करती है । इसी के सहारे रचनाकार अपने विचार, भाव भंगिमाएँ अमुभूतियों को शब्दों की सत्ता, महत्ता और गहराई से अंकित करता है -"लेखक की अंतरभेदी दृष्टि मानवीय मन-भावों में मूल्यों के साथ-साथ जाने-आनेजाने, परिचित-अपरिचित को पंक्तिबद्ध करती है । कुछ ऐसा सहज गहराई से कि शब्दों के जरिए सर्वव्यापी चैतन्य संप्रेषित होकर साकार हो उठे ।"[2]

कृष्णा सोबती शब्द और भाषा के जगत के शब्द चित्रकारों को मानव समाज में या भाषायी साम्राज्य में लोकमानस के अंतर्भावों को शब्द और अर्थ के रंगों से रंगनेवाले चितेरे का सबसे बड़ा चित्रकार का चितेरा या कलाकार मानती है । यह कलाकार शब्द भाषा और विचारों के माध्यम से अनुभूतियों को अपनी अभिव्यंजना शैली में कई प्रकार के रंग रुपों में अभिव्यक्त करता है । कभी न मिटने के लिए अलौकिक बन जाता है जो 'शब्द' संस्कृति की देन है -"अपनी शाब्दिक और आत्मिक

---

1. शब्दों के आलोक में - कृष्णा सोबती
2. शब्दों के आलोक में - कृष्णा सोबती

ऊर्जा में यही प्राणवान तत्व साहित्य का सरोकार कहलाता है । जिस 'विचार' को अपने पाठ के लय-ताल में बुनते हैं, वह जीवन अमरत्व है जो अपनी नश्वरता को अनश्वरता में बदलता है । विचार, रंग, रुप, स्मृति, अक्स, भावनाएँ, स्थितियाँ, आपसी संबंध, दूर-पास के मुखड़े, जाने-अनजाने, पहचाने पात्र, दिल और दिमाग में गुँथे हुए, कागज पर उभरते हुए कभी आमने-सामने, कभी समानांतर पटरियों पर दौंड़ते, कभी एक दूसरे को आर-पार काटते हुए । लेखिकीय व्यक्तित्व औऱ उसके शैली परिधान को क्षण भर के लिए भूल जाए तो यह है उसके पिछवाड़े का अवचेतन जो अपनी शर्तों पर उघड़ता है और सहस्त्र-सहस्त्र रंग-रुपों में खुलता है, खिलता है, रुपायित होता है । सजदे की आँख पाना और हाथ में कलम आना मानवीय जन्म का अलौकिक पुरस्कार है ।"[1]

"अपनी भारतीय भाषाओं के विशाल परिवार को देखें तो हर भारतीय भाषा अपनी निजता को अनेक रुपों में, शैलियों में प्रस्तुत करती हैं । हमारी भारतीय विविधता का लोकतंत्र जनमानस में स्थित है । इसलिए भाषायी संदर्भ में निर्णायक हो उठता है कि हम भाषायी तेवर को, शब्दों के वजन को, माप को, शब्दों के घरानों को कैसे चीह्नते, जानते-पहचानते है, उसके अर्थों को अपने अनुभव में और कैसे साहित्यिक और भाषायी समझ से विचार को सही मुखड़े और मुद्रा में प्रस्तुत करते हैं । लिखित भाषा, भाषायी संस्कार, शैली, अलंकार उसकी गरिमा को सुदृढ़ करते हैं और वाचन-परंपरा में बोलियों की लचक भाषा के कोलाहल संवाद को समृध्द करती है । 'लोकमानस' बोलियों की प्राणवान धाराओं को सूखने नहीं देता ।"[2]

"शब्दों का भाषायी शोर और गहन तथा गूँज केवल हमारी श्रुति को ही नहीं खटखटाती, वह हमारे अंतर के आज और कल को भी पुकारती है । अतीत परंपरा और वर्तमान को एक साथ एक पाठ में स्थित करती है ।"[3]

शब्दों के आलोक में अज्ञान रुपी अंधकार को नष्ट कर शब्दों की सत्ता का साम्राज्य स्थापित होने के लिए शब्द की महत्ता को गहराई से समझने के लिए उसकी महिमा शक्ति को जानकर शब्दों के आलोक में खुशहाल जिंदगी जीना ही लोकमानस का महत्तम उद्देश है ।

---

1. शब्दों के आलोक में - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

4. सोबती-वैद संवाद -

कृष्णा सोबती व कृष्ण बलदेव वैद द्वारा रचित यह अनुठी रचना सन् 2007 में प्रकाशित हुई है । इसमें हिंदी के लब्धप्रतिष्ठित दो उपन्यासकार कृष्णा सोबती व कृष्ण बलदेव वैद अपने-अपने लेखकीय अनुभव के साथ लंबे संवाद के हवाले से एक-दूसरे के आमने-सामने हैं । दो कलमें, दो अलग-अलग रचनात्मक प्रतिक्रियाएँ, दो शिल्प, दो शैलियाँ, दो दृष्टियाँ, दो दृष्टिकोन और सभी विभिन्नताएँ समाहित होती है एक ही अनुशासन में । यह संवाद दोनों लेखकों की शिमला के राष्ट्रपति निवास के उच्च अध्ययन संस्थान के रिकार्डिंग कक्ष में की गई बातचीत और उपस्थिति का ऐतिहासिक दस्तावेज़ है ।

दो लेखकों के साहित्यिक तेवर, सहमति-असहमति, विवाद-विमर्श, 'सोबती-वैद संवाद' में उजागर होती हैं । समाज और राजनिती में लेखकीय जीवन में जो कुछ भी मौजुद है साहित्य पाठक, आलोचक, समाज संगठन-संस्थान, प्रकाशन व्यवस्था और तंत्र, नागरिक के रुप में लेखक की नैतिक संहिता इन सभी पहलुओं को पड़तालता यह संवाद साहित्य के हर पाठक के लिए अपूर्व कृति है ।

इस संवाद में गुजरे हुए जमाने की, अगले जमानों की बातें चल निकलती है । वर्तमान तो बेशक हर पहलु से उन बातों में शामिल हैं । बातों का सिलसिला दशकों के आर-पार फैलता रहा अपने समय को पढ़ने समझने और लगातार ढ़ीठ होते हुए युग की बेगैरत निर्ल्लज आँखों में आँखे डालकर देखते रहने के साथ । और उजागर होता है वह पूरा युग भी जिसमें बँटवारा हुआ, आजादी मिली, गाँधीजी की हत्या हुई, देश की बदहाली के नये स्वप्न शुरु हुए, नयी विचारधाराओं ने नये हौसले दिए, उत्तर आधुनिकता ने किस्म-किस्म के अंत घोषित किए और आखिर में भूमंड़लीकरण ने सबकुछ को झंझोड़ डाला । यह सब इस संवाद का हिस्सा है । कुछ आत्मीय, आत्मीक प्रसंगों तथा और भी अनगिनत विषयों, बिंदुओं को समेटे यह संवाद लगता है दो लेखकों की बातचीत करते हुए सामने सून रहे हो । अतीत और वर्तमान की सर्जनात्मक यात्रा से गुजरते हुए पाठक उसमें स्वयं शामिल पाता है - "यही वजह है कि कालखंड़ के अनेक हिस्सों परिदृश्यों, घटनाओं और अनुभूतियों के कारण ही यह

संवाद बौद्धिक, मानसिक, आत्मीय और आनंद के स्तर पर सहज ही पाठकों की अनुभूति का हिस्सा बन जाता है ।"[1]

दोनों लेखक समकालीन होने के कारण अतीत, वर्तमान और भविष्य को टटोलते हुए साहित्य, समाज, पाठक, आलोचक, प्रकाशक, राजनीति, लेखक, भाषा, शैली, नैतिकता, संहिता आदि का अपने समकालीन साहित्य और सर्जक को देश-विदेश में संवाद करते हैं । जहाँ हस्तक्षेप या असहमति की बात आती है वहाँ दोनों की दृढ़ता, शालीनता, विनम्रता देखते ही बनती है । कृष्णाजी की प्रखरता, प्रवाहपूर्ण भाषा, अकाट्य तर्क और अपने खास तेवर में बात करने की कला, वही वैदजी की विद्वत्ता, विनम्रता, सहजता और बहुत ही स्पष्ट और ईमानदारी से किए गए सवाल ... ।

यह संवाद दशकों का सहेजा, रचा और निभाया हुआ बौद्धिक उत्तेजन और रचनात्मक ताप के संयोग और संयोजन का परिणाम है ।

[1] आलोचना - संपा. नामवर सिंह, जनवरी-मार्च, 2007

अध्याय द्‌वितीय

स्वातंत्रोत्तर उपन्यास : दृष्टि, संवेदना, पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव और भाषा शिल्प

2.1 स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास : दृष्टि एवं संवेदना

हिंदी उपन्यास मानव चरित्रांकन का सबसे अच्छा माध्यम रहा है । हिंदी उपन्यास के विकास में परिवर्तन के अनेक आयामों को छुआ है; यह हिंदी उपन्यास की लोकप्रियता एवं श्रेष्ठत्व का द्‌योतक है । व्यक्ति, मन, समाज, घटना और वर्णन के पड़ावों से गुजरता हुआ हिंदी उपन्यास अपने ध्येय की ओर अग्रेसर हो रहा है ।

मानव जीवन हमेशा संघर्षरत रहा है । उत्थान-पतन के कितने दौंरों से गुजरता हुआ आज वर्तमान में अपनी स्थिति तक पहुँच सका है । हिंदी उपन्यास में मानव जीवन को कथानक का केंद्र बनाकर उसके विविध रुपों का उद्‌घाटन किया जा रहा है । उपन्यास विधा मुख्यतः आधुनिक सभ्यता की देन है । उपन्यास मानव की समग्रता की ओर उत्सुक वह महाकाव्य है, जिसमें मानव अपने संपूर्ण स्वरुप में चित्रित होता है । जिसमें मानव जाति का वैज्ञानिक सर्वेक्षक बनकर उसका अनुसंधान करता है ।

उपन्यास का आरंभिक आभास काव्य ग्रंथों में ही दिखाई देता है । युनानी साहित्य में खासकर यह देखा गया है । संस्कृत, रुमानी, युनानी साहित्य मे रोमांस अपने विविध रुप में इतिहास, दर्शन, धर्म सभी साहित्य में रोमानी साहित्य का समावेश पाया जाता है । उपन्यास केवल मात्र कथानक गद्‌य नहीं है, बल्कि वह मानव जीवन का गद्‌य है, जो मानव को परिपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास करता है "हिंदी साहित्य के इतिहास में गद्‌य का आरंभ पद्‌य के बाद हुआ और गद्‌य साहित्य में उपन्यास की बारी देर से आयी ।"[1]

उपन्यास भारतेंदु युग में अनुवाद के रुप में हिंदी साहित्य में आया है । शुरु में उपन्यासों का केंद्र कौतुहल एवं मनोरंजन था । ब्रिटिशों के शासन में भारत में पुनर्जागरण काल का आरंभ हुआ है । जिससे उपन्यास सामाजिक संबद्‌धता ग्रहण करता गया और कथानकों में सामाजिक समस्याओं का अंकन देखा जा सकता है । उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने 'गोदान' के माध्यम से नई वृत्तियों को जन्म लेना

1. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य

शुरु किया । उन्होंने आदर्शपरक सुधारवादी आश्रम व्यवस्था से अपनी लेखनी निकालकर यथार्थवादी भावभूमि पर चलाई है । प्रेमचंद के बाद स्वतंत्रता तक के काल के साहित्य की प्रवृतियों को बांधने के काम स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश ने किया । स्वतंत्रता प्राप्त होते ही भारतीय सामाजिक मूल्यों में अचानक परिवर्तन आया और साहित्यिक मूल्यों में भी बदलाव हुआ ।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश के पुर्ननिर्माण में वर्गहिन, शोषणमुक्त समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य था परंतु -"हमारे कथित योजनाबद्ध विकासे ने जिस अर्थतंत्र को विकसित किया वह उपभोग प्रधान रहा । अतः मुनाफा तथा उपभोग केंद्रीत हुए । फलतः मुनाफे के लिए भ्रष्टाचार और उपभोग के लिए अनैतिक लोभ विकसित होने ही थे । इसलिए लोभ चरित्र के प्रमुख वाहक बने । बीच में सामाजिक संस्थाओं तथा प्रशासन मशिन का जो भय था वह भी घुस, रिश्वत, गुट-राजनीति, संरक्षण चक्र आदि के द्वारा निष्क्रिय सा बना दिया गया । अतः उच्च कार्यों में तो उभरी पदलोलुपता और मुनाफा, तथा व्यापक जनता में फैली भयानक गरीबी और स्वार्थपरता दोनों ही ओर अमानवीयता गहरी हुई, दोनों ही ओर विभिन्न प्रकार का आत्म परायनपन नजर आया । समाज में श्रम का निर्वासन तथा व्यक्ति में परायापन ।"[1] वर्ग वैषम्य बढ़ता गया; आर्थिक विषमता , भ्रष्टाचार, राजनैतिक बौनापन, मानवीय मूल्यों का निष्कासन, महंगाई, मानवीय रिश्तों का बिगड़ना, बेकारी, चरित्रहीनता ने व्यक्ति को उस सीमा तक तोड़ दिया कि उसके मन में भविष्य के प्रति आस्था ही नहीं रही -"औद्योगिक सभ्यता व्यक्तित्व का नाश करती है । व्यक्ति में आत्मनिर्णय, विवेक, निर्णय शक्ति का ऱ्हास हो जाता है, उसका व्यक्तित्व भी विखड़ित हो जाता है ।"[2]

सभी क्षमताओं से युक्त व्यक्ति उपेक्षित कर दिया गया और क्षमता रहित वर्ग संपूर्ण समाज का प्रयोग निजी स्वार्थों के लिए करने लगा । व्यक्ति 'वस्तु' में परिवर्तित कर दिया गया । स्वतंत्रता के बाद समय मोह भंग का समय था । देश के विभाजन के पश्चात् की स्थिति ने मानव-मूल्यों के विघटन को चरम सीमा पर पहुँचा दिया । इससे देश में मूल्यों, आस्थआओं का खंड़ण, बुद्धिजीवियों की हार से आत्मग्लानी से टूट गया और आगजनी, बलात्कार, अपहरण एवं हत्याओं का बोलबाला शुरु हुआ । इस स्थिति ने विश्वास को तोड़कर व्यक्ति को अपाहिज बना दिया । जिससे उसे दूसरे के सहारे जीना

1. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण - डॉ. रमेश कुंतल मेघ
2. नये साहित्य सा सौंदर्यशास्त्र - मुक्तिबोध

पड़ता था । वह पूर्णतः नया व्यक्ति था, जो आज़ादी के बाद स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का नायक बना । जिसे पलायनवादी बना दिया । औद्योगिकता ने उसे एकदम शुष्क या निरस कर दिया । स्वार्थी प्रवृतियाँ एवं पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण ने व्यक्ति को हताशा, आतंक एवं तणाव ने वह विस्थापित होकर नैतिकता और संस्कृति के अवमूल्यन के पाटों में अपना सार्थक व्यक्तित्व खो बैठा । विदेशी आक्रमणों ने उसके अस्तित्व को अधिक मलिन कर दिया ।

उपरोक्त सामाजिक पृष्छभूमि पर स्वतंत्रता के बाद जो उपन्यास लिखे गये, उन्हें यदि - "प्रवृत्तियों की दृष्टि से दोखा जाए तो सबसे प्रमुख प्रवृत्ति आधुनिकता के बोध और व्यक्ति स्वातंत्र्य की है । दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति यथार्थ की व्यापक स्वीकृति है । अन्य प्रवृत्तियों में आँचलिकता, अंतर्राष्ट्रीयता और तकनीकी का मोह की प्रवृत्तियाँ प्रमुख है ।"[1] संपूर्ण उपन्यास विधा को मद्देनजर रखते हुए अगली चर्चा निम्नांकित बातों पर करना ज्यादा सार्थक होगी ।

2.2 उपन्यास विधा पर पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव -

आज़ादी के बाद भारत अपना स्वतंत्र अस्तित्व के पुनर्गठन को लेकर विश्व मंच पर खड़ा रहा । जिससे अपने स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की स्थापना हुई । अंतर्राष्ट्रीय चेतना तथा संशोधन की प्रवृत्ति के कारण उपन्यासकार अपनी सीमाओं को विस्तृत कर वे पाश्चात्य विचारधारा को स्वीकार कर अपने उपन्यासों में नये आयाम निर्माण किये हैं । अज्ञेयजी के मतानुसार - "उपन्यास का यह विकास डार्विन और मार्क्स के अविर्भाव और प्रचार के साथ-साथ हुआ । नये वैज्ञानिक अनुसंधान और ज्ञान ने उपन्यासकार की दृष्टि बदल दी । उसका लिखना ही बदल गया, क्योंकि उसकी दृष्टि बदल गयी । उसके बाद एक और बहुत बड़ा परिवर्तन सिगमंड फ्रायड़ के साथ आया । उसकी मनोविश्लेषण पद्धति ने व्यक्ति-मानस और व्यक्ति-चेतना की गहनताओं पर नया और तिखा प्रकाश डाला । इससे उपन्यासकार को व्यक्ति-मानस को समझने में बड़ी सहायता मिली, बल्कि एक नयी दृष्टि और पैठ मिली, जिसके सहारे वह व्यक्ति-विशेष के मन के भीतर होनेवाले संघर्ष को पहचान सका ।"[2]

---

1. हिंदी का गद्य साहित्य - डॉ. रामचंद्र तिवारी
2. आधुनिक उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता - नवलकिशोर

रूसी उपन्यासकार टालस्टाय ने भारतीय उपन्यासकारों को सर्वाधिक प्रभावित किया । जैनेंद्रकुमार पर टालस्टाय, रोमा रोला और डी. एच्. लॉरेन्स का रागेय राघव पर फ्रांसीसी रम्यारण्यानों का धर्मवीर भारती पर बाल्जाक और ऑस्कर वाईल्ड का भगवतीचरण वर्मा पर विक्टर ह्यगो और अनातोल का तथा डॉ. देशराजसिंह भाटी पर टालस्टाय एवं डी. एच्. लॉरेन्स का प्रभाव दृष्टिगोचर किया जा सकता हैं ।

कई उपन्यासकारों पर फ्रायड़, एडलर और यंग के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव पड़ा । अत: उपन्यासों में मानव आंतरिक प्रवृत्तियों को प्रधानता मिलती गयी । धीरे-धीरे उपन्यास कला की संरचना नें बाह्य घटना और चरित्र का आधार कम होता गया और अनुभूति को आत्मनिष्ठ रुप के आधार पर ही उपन्यासों की रचना की जाने लगी । जैनेंद्र, अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी ने इसका प्रयोग अपने उपन्यासो में बहुत अच्छी तरह से किया हैं । जैनेंद्र अंतर्मन के रचनाकार है तो अज्ञेय अपने पात्रों की मानसिकता को विश्लेषित करने, उनकी चारित्रिक ग्रंथियों को खोलने में, अंतर्मन को स्पष्ट करने में सपल रहे हैं । इलाचंद्र जोशी के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद श्रेष्ठतम रुप में है ।

प्रेमचंद परवर्ती युग में वैयक्तिकता के साथ समाज की पकड़ ढ़ीली हुई और व्यक्ति प्रकार के स्थान पर 'विशेष' बनने लगा और अंतर्जीवन का महत्व बढ़ गया । इसके साथ ही मन नें उड़नेवाले भावों, प्रतिक्रियाओं और अंतर्द्वंवद्व का चित्रण प्रधान हो गया । मनोवैज्ञानिक उपन्यास स्वस्थ व्यक्ति एवं समाज नहीं बना सकें - "इन लेखकों की अधिकांश रचनाओं में जीवन के यथार्थ नहीं कल्पनाशील परिस्थितियों एवं अवचेतन मन की स्थितियों, वासनामूलक प्रवृत्तियों और अहं का ही चित्रण किया गया है । इन रचनाओं में जो व्यक्ति चित्रित हुआ है, वह सेक्स के अभिशाप से ग्रस्त है और उसके जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान, संघर्ष और जूझनें में नहीं, नारी की गोद में है।"[1] एमिल जोला का वैज्ञानिक भौतिकवाद भारत पर इतना प्रभाव नहीं कर सका । पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र' की रचनाओं पर कुछ हद तक जोला के प्रकृतवाद का प्रभाव है । यशपाल के 'देशद्रोही' पर प्रभाव दृष्टिगत होता है ।

1. हिंदी उपन्यास उपलब्धियाँ - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

मार्क्सवाद का प्रभाव उपन्यास पर ही नहीं बल्कि कविता, कहानी, समीक्षा तथा अन्य कलाकृतियों पर हुआ हैं । हिंदी में यशपाल अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, उपेंन्द्रनाथ अश्क, शिवप्रसादसिंह आदि के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थवादी विश्लेषण एवं निष्कर्ष देखा जा सकता है ।

2.3 उपन्यास और आधुनिक बोध -

भारत में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण को ही आधुनिकीकरण समझा जाता है । यह सच है कि संकटबोध ही वर्तमान में आधुनिक बोध है । वास्तविक आधुनिकता का आशय है संपूर्ण सत्य का साक्षात्कार और इसका सर्वश्रेष्ठ माध्यम उपन्यास है, क्योंकि उपन्यास का केंद्रीय प्रयोजन ही जीवन की व्याख्या है ।

स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं की पैनी निगाहों का आरंभ और तर्क संगत व्याख्या करने की चेष्टा की है । इन उपन्यासों ने युग की सच्चाइयों को बयान किया हैं । इस काल में उपन्यासकारों ने मानव-मूल्य और मर्यादाओं की गहन सामाजिक संबद्धता, अनुभूतियों की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति की इमानदारी को स्थापित किया है । इनके उपन्यासों के पात्रों में प्रचंड़ संघर्ष हैं, विद्रुपताएँ, कुंठाएँ, घुटन, अकेलापन और पराजय के क्षण है । परंतु यह स्थितियाँ उन्हें तोड़ती नहीं । उनका विश्वास मनुष्य की अद्म्य, अपराजेयता में है । अतः इन उपन्यासों का परिवेश शुद्ध भारतीय हैं ।

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में मानव और समाज के संबंधों का पुनर्मूल्यांकन व्यक्ति और परिवेश के सूत्रों को अन्वेषित करने की दृष्टि से हुआ है । इन उपन्यासों का व्यक्ति आत्मकेंद्रीत नहीं, समाज से प्रतिबद्ध है । उसमें दायित्व चेतना है, जो निरंतर संघर्षशील है । वह जानचा है कि एक नैतिक मूल्य एवं एक नये विश्व की रचना के लिए जहाँ एक ओर धर्मोंमुख रुढिवादी परंपरा तथा धार्मिक आड़बरो का निषेध आवश्यक है, वही दूसरी और भारतीय संस्कृति के कुछ प्राचीन तत्व भी आवश्यक हैं । इसीलिए वह भारत का पूर्णतः निषेध न कर पश्चिम को नहीं ओढ़ता बल्कि दोनों में आवश्यक सामजस्य निर्माण करता है ।

अमृतलाल नागर, वृंदावनलाल वर्मा, श्रीलाल शुक्ल, गिरिराज किशोर, भगवतीचरण वर्मा, शिवप्रसादसिंह, रांगेय राघव आदि के उपन्यासों में बदलते हुए पारिवारिक संबंध, स्त्री-पुरुष के संबंध तथा नारी के संबंध में एक नया दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है । इस युग में "स्त्री-पुरुष के पारस्पारिक आकर्षण को पवित्रता-अपवित्रता से परे सहज मानवीय वृत्ति के रुप में स्वीकृति मिली ।"[1] कथावस्तु के मूल्य में मुख्यत: मध्यवर्ग अथवा निम्न मध्यवर्गिय पात्र है । निम्नमध्यवर्गिय नारी पात्र अब अपनी प्राचीन परंपराओं से कटकर नवीन मूल्यों की तलाश कर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना चाहती है । आर्थिक निर्भरता, उसकी दास्ता की मुक्ती का आरंभिक चरण हो सकता हैं । इसके लिए संघर्षरत नारी के चित्र भी मिलते हैं ।

प्रेम का आधुनिक स्वरुप, प्रेम और वासना, प्रेम का परिणाम, नयी पिढ़ी का इस संदर्भ में विद्रोह आदि अनेक प्रश्न उठ़ाये गये है । उसका समाधान भारतीय परिवेश के समानांतर करने की कोशिश की गयी है । 'प्रेम' शब्द की भी उपन्यासों में अनेक व्याख्याएँ मिली । निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में प्रेम का एक रुप दैहिक रुप में चित्रित हुआ है । सच यह है कि आज के उपन्यासों में आधुनिकता के नाम पर जिस नारी का चित्रण हो रहा है वह कामातूर नारी है । ऐसा पुरुष उपन्यासकार ही नहीं अपितु स्वयं लेखिकाओं ने भी चित्रित किया है । दृष्टि का यह एकांगीपन स्त्री-पुरुष संबंधों के चित्रण को बहुत विकलांग बना देता है । सुक्ष्म संवेदनशीलता के धरातल पर नारी का वास्तविक मन पूरी गहराई के साथ नित्रित नहीं हुआ है ।

उपन्यासकार हंसराज हरबर का 'पंखहीन तितली', कमलेश्वर का 'काली आँधी', अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल', राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश' और 'उखडे हुए लोग', यशपाल का 'झूठा-सच', जैनेंद्र का 'सुखदा' आदि उपन्यास पुरुष और स्त्री के संबंध को लेकर ही लिखे गये है । इसलिए आधुनिकता बोधपरक उपन्यासों का फलना बहुत व्यापक है कि समसामयिक बोध से जुड़ी सभी प्रवृतियाँ इसमें आती है । स्वातंत्र्योत्तर काल में अधिकांश उपन्यास इसी प्रवृत्ति के अंतर्गत आते है ।

1. हिंदी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता - नवल किशोर

2.4 उपन्यास और आधुनिकता बोध का आरोप -

आधुनिकता बोध के आरोपित उपन्यासों का ध्यान अपने परिवेश की तरफ रहता है । बहरहाल उनका चित्रण यथार्थ कम, आरोपित अधिक होता है । स्वातंत्र्योत्तर काल में नैतिक-मूल्यों के पतन के कारण जो आस्थाहीनता की परिस्थिति निर्माण हुई, इससे ये उपन्यास ज्यादा आक्रमक हुये । उनमें ओढ़ी हुई मानसिकता, झूठा और सतही संत्रास है, जीवन संघर्ष से पलायन, नपुंसक, आतंक, समाज द्वारा दी गयी झूठी परतंत्रता, भावुकता भरी आत्मरति है, जिनका आज के सामाजिक यथार्थ से दूर का भी रिश्ता नहीं हैं ।

आधुनिकता बोध के आरोपित उपन्यासों पर अस्तित्ववाद का ज्यादा ही प्रभाव है । इन उपन्यासों में - "निश्चित आस्था और स्पष्ट जीवन-दर्शन के अभाव में सशक्त और प्रेरक कथानकों की सृष्टि नहीं हो सकीं ।"[1] हमें यहाँ बेहिचक इस बात को स्वीकार करना होगा कि सामाजिक संबद्धता के दावों के बावजूद इन उपन्यासों में न तो सामाजिक मूल्य है और नहीं उसके प्रति आस्था । इनमें मानव-कंकाल का ढ़ाँचा मात्र चित्रित किया गया है ।

उपन्यासकार मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद करमे', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', उषा प्रियवंदा का 'रुकोगी नहीं राधिका' आदि उपन्यास आधुनिकताबोध के आरोपित उपन्यास के अंतर्गत आते हैं ।

2.5 स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का शिल्प -

साहित्य में उपन्यास विधा ही सर्वाधिक यथार्थ परक साहित्य माना गया है । इनव जीव का दस्तावेज होने का कारण उपन्यास के संदर्भ में शिल्प का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं रह जाता, जितना 'वस्तू' का । उपन्यासों में महत्व कथ्य का होता है और मानव-मूल्यों की मर्यादा के अन्वेषण की प्रक्रिया में वह अपना रुप स्वयं ग्रहण करता है । कला के स्तर पर उपन्यास का मूल संप्रेषणीयता कही जा सकती है, तो रचनाकार के यथार्थ के प्रति संवेदनशीलता के अनुपात में आती है । रचनाकार की अनुभूति जितनी गहन होगी अभिव्यक्ति के स्तर पर शिल्प की कृत्रिमता क्रमशः विलय होती जायेंगी और अपने कथ्य के अनुकूल वह स्वयं अपने शिल्प का निर्माण कर लेगी ।

---

1. हिंदी का गद्य साहित्य - डॉ. रामचंद्र तिवारी

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में शिल्प संबंधी एक उल्लेखनीय विशेषता यह कही जा सकती है - "उपन्यासों में नीहित वर्णनात्मकता में दृष्टि सुक्ष्मातिसुक्ष्म धरातल पर अभिव्यक्त हुई है, जो कहीं-कहीं बौद्धिक हो गया है तो कहीं पर अस्पष्ट हो गई है । पर जहाँ वह संतुलित है, वहाँ उपन्यास पर भी आरोपित प्रतीत नहीं होती । एक और शिल्प का तादात्म्य मानव जीवन के विविध पक्षों से किया है तो दूसरी ओर मानव के अंतर्जगत् में प्रवेश करके अंतर और बाह्य का सामजंस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है ।"[1] वस्तुतः उपन्यास का शिल्प युगीन आकांक्षा से जुड़ा है, प्रस्तुत काल के कथा साहित्य को देखें तो उसमें युग की वास्तविकता की ही गहरी अभिव्यक्ति हुई है, जो यद्यपि शिल्प और वस्तु की नवीनता और संश्लिष्टता के कारण सहज संप्रेषणीय नहीं है और थोड़ी दुरुह और अनजानी सी लगती है । लेकिन प्रयोग, नये बिंब विधान, पुरानी मान्यताओं तथा झूठे आदर्शों के प्रति अनास्था और विद्रोह के भीतर उनमें गहन प्रेम और जीवनाकांक्षा ध्वनित है ।

उपन्यासों में अपरिचितपन तथा दुरुहता का अहसास होना अस्तित्ववाद के प्रभाव से दिखाई देता है । इसकी मुख्य वजह जहाँ मनौवैज्ञानिक चित्रण और अंतर्द्वद्व की प्रधानता और दार्शनिक विवेचना की मानी जाती है । इसमें जहाँ प्रतीकों के माध्यम से घटनाओं की गहनता दी गयी, वहीं नवीन बिंबों की सर्जना की गई । यह सारा आयातित होने के कारण सामान्य पाठकों को ग्राह्य नहीं होते । मनौवैज्ञानिक उपन्यासों में अंतर्निरिक्षण के कारण शैली अंतर्मुखी हो गई है । पात्रों की वेशभूषा, हाव-भाव का चित्रण अर्थात् स्वाभाविकता आ सके ।

उपन्यासों में आधुनिकता बोध सामाजिक यथार्थता के कारण लेखक अपने विचार स्वतंत्र रुप से लिखने लगे - "जहाँ कथा कहनेवाला पात्र दूसरे के ही चरित्रों पर प्रकाश ड़ालता था, उसके स्वयं का चरित्र बहुत स्पष्ट नहीं हो पाता था । दूसरों के चरित्र का भी केवल बाह्य पक्ष ही उद्घाटित हो पाता था । किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के काल में लेखकों ने ऐसी सुक्ष्म प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत की, ऐसे स्वाभाविक संकेत एवं प्रतीक उपस्थित किये, जिससे इन पात्रों का संपूर्ण व्यक्तित्व प्रकाश में आता है और उनके अंतः तथा बाह्य का संघर्ष अपनी पूरी यथार्थ के साथ उद्घाटित होता है ।"[2]

---

1. हिंदी उपन्यास-उपलब्धियाँ - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
2. वही

उपन्यास विधा के उद्‌भव से ही उपन्यासकारों की प्रिय शैली वर्णनात्मक रही है । समाजवादी यथार्थपरक उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखे गये, परंतु प्रारंभिक और स्वातंत्र्योत्तर वर्णनात्मक उपन्यासों में स्थूलता से क्रमशः सुक्ष्मता की ओर का अंतर है । कहीं आत्मकथात्मक शैली का भी प्रयोग मिलता है, जिसका मुख्य पात्र 'मैं' होता है तो कहीं डायरी शैली का भी प्रयोग हुआ है ।

आँचलिक उपन्यासकारों ने बाह्य पृष्ठभूमि के सुक्ष्म चित्रण को प्रधानता दी है । 'मैला आँचल', 'परती परिकथा' में फोटोग्राफिक शैली का प्रयोग किया गया है । जिससे रचना में ध्वन्यात्मकता तथा बिंबों की प्रधानता है । उपन्यास और आँचलिक उपन्यासों में 'भाषा' का मुख्य अंतर है । चरित्रों की स्वाभाविकता के चरित्रानुकूल भाषा का प्रयोग है । विश्वसनियता प्राप्ति के लिए क्षेत्रिय भाषा या बोलियों का ही नहीं अस्तु लोककथा तथा लोकगीतों, अंधविश्वासों व आड़ंबरों का भी प्रयोग आँचलिक उपन्यासकार करते है ।

साहित्य में आँचलिक प्रवृत्तियों के प्रवेश से जहाँ तक कथावस्तु के लिए एक नया विस्तृत आयाम प्राप्त हुआ, कहीं शिल्प के दृष्टिकोन से भी नवीन शिल्प-विधि का अन्वेषण किया गया । क्योंकि बिना गाँवों को जाने 75% भारत को नहीं जाना जा सकता । इसलिए एक संपूर्ण राष्ट्र की तस्वीर के लिए आँचलिक दृश्यों को साहित्य में चित्रित करना परमावश्यक ही था ।

2.6 स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों की भाषा -

यथार्थ भाषा के माध्यम से ही यथार्थ भावों की अभिव्यक्ति संभव है । आज़ादी के बाद उपन्यास विधा में एक स्वतंत्र भाषा की खोज की कोशिश की गयी । जिससे भाषा में लोकतत्वों का समावेश और चित्रात्मकता का रुप हासिल हुआ । जिंदगी की गहराई से प्रतीक या बिंबों को चुना गया । वर्तमान भाषा में स्थूलता नहीं और न ही इतिवृत्तात्मकता । आज की भाषा खिचड़ी बन गयी है, वजह पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग है ।

उसमें संस्कृत, जनपदीय, अंग्रेजी शब्द, बहुतायत प्रयुक्त हुये हैं। भाषा में भावुकता, सपाटबयानी, अलंकारप्रियता, निरसता आदि विशेषताएँ दिखाई देती हैं तो कहीं प्रतीक योजना के कारण रहस्यात्मकता भी झलकती है । भाषा की संप्रेषणीयता, काव्यात्मकता तथा संगीतात्मक प्रयोगों के कारण अधिक बढ़ी है । भाषा को परिष्कृत या संस्कारित करने की चाह में उसमें अमूर्तता और

बौद्धिकता आ गयी है । इस काल के साहित्य की भाषा के विषय में कोई ठोस धारणा नहीं बन पायी, यहीं इसकी सच्चाई है । आधुनिक युग की साहित्यिक भाषा की खास प्रवृत्ति यह है कि संस्कृनिष्ठता और आँचलिकता का द्वंद्व ।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन कथा साहित्य में शिल्प और भाषा में जो नविनता स्वीकार की गई, जिससे आगामी हिंदी साहित्य के विकास में अच्छा-खासा योगदान हुआ है । यह संपूर्ण साहित्य कभी वेष्टि को तो कभी समाष्टि को केंद्र में रखकर प्रस्तुत हुआ है । स्वातंत्र्योत्तर या आधुनिक काल का साहित्य सबसे अधिक 'नारी' तथा 'नारी-विमर्श' को लेकर ही बहुचर्चित रहा है ।

अध्याय तृतिय

नारी का मनोवैज्ञानिक विकास

मनोविज्ञान व्यक्ति की वातावरण से संबंधित चेष्टाओं का वैज्ञानिक अध्ययन माना जाता है । मनोविज्ञान आज एक स्वतंत्र एवं नया निज्ञान माना जाता है - "प्राचीन काल में यह तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र का एक अंग था । इसके बाद इसने अनेक रुप बदले है । पहले यह आत्मविद्या, फिर मनोविद्या हुआ, उसके बाद चेतन विद्या और फिर मनोव्यवहार की विद्या ।"[1] इस बदलाव के साथ मानसिक विषयों के संबंध में निरिक्षण, परिक्षण और सामान्यीकरण की आगमनात्मक पद्धति का प्रयोग होने लगा । मनुष्य के मन के उपरी स्तरों से संतुष्ट होकर मन के भीतरी स्तरों का भी अध्ययन आरंभ हुआ और मनोविज्ञान को मनोविश्लेषण का रुप प्राप्त हुआ - "व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक दशा का महत्व दूसरे व्यक्तियों के समूहों एवं समाज़ की गुत्थियों को सुलझाना चाहता है ।"[2] इस अध्ययन का स्वरुप पाँच पद्धतियों द्वारा निश्चित होता है - अंतरदर्शन, निरिक्षण, प्रयोग, तुलना और मनोविश्लेषण । इसका क्षेत्र जीवन की वे गुढ़ और सहस्यमयी प्रवृतियाँ है जो मानव समाज की सभ्यता में सहायक होती हैं ।

मनोविज्ञान का व्यापक परिचय यहाँ न अभिष्ट है और न उचित है । रचना कर्म के लिए आज मनोविज्ञान आवश्यक समझा जाता है और चरित्र-चित्रण के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान उपादेय होता है । प्राचीन साहित्य में भी मनोविज्ञान का किसी न किसी रुप में नारी चित्रण के साथ भी संबंध रहा है । हमारे विद्वानों ने नारी चित्रण में व्यावहारिक मनोविज्ञान का प्रयोग किया है । अतः हम यहाँ उन सिद्धांतो की चर्चा करेंगे, जो नारी के मनोवैज्ञानिक विकास में मददगार साबित हुए हैं ।

"नारी का मनोवैज्ञानिक विकास के अध्ययन की दृष्टि में रखकर सबसे पहले हमारा ध्यान वात्सायन कृत 'कामसूत्र' पर जाता है । वात्सायन के पूर्व भी कई विद्वानों ने इस विषय पर किताबें लिखी है पर इन सबका समन्वित रुप या सार संग्रह सन् ई. की पहली या दूसरी शताब्दी में वात्सायन ने

---

1. मनोविज्ञान और शिक्षाशास्त्र - भैरवनाथ झा
2. शिक्षाशास्त्र - डॉ. सिताराम जायस्वाल

अपनी प्रसिद्ध 'कामसूत्र' लिखा ।"[1] कामसूत्रकार ने इसकी परंपरा का उल्लेख स्वयं किया है । इससे यह कह सकते है कि मानव जीवन के गूढ़ व रहस्यमय व्यवहारों, चेष्टाओं और प्रवृतियों के अध्ययन का प्रयत्न प्राचीन काल से ही आरंभ हो गया था । लोक अध्ययन एवं चिंतन-मनन के बाद ही वह कुछ शास्त्रीय तथ्य, लोकार्थ सृजन कर सकें होंगे । नारी के संदर्भ में उनकी धारणा का सही स्वरुप क्या था ? यह कहना असंभव सा हो सकता है, परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी उनके अध्ययन का केंद्र बिंदु अवश्य थीं ।

यौन मनोविज्ञान का सबसे पहला एवं सुव्यवस्थित स्वरुप प्रस्तुत करनेवाला ग्रंथ 'कामसूत्र' ही माना जा सकता है - "काम के स्वरुप के स्पष्ट करने वात्सायन ने आत्मा से संयुक्त, अंतर्मन से अधिष्ठित श्रोत, त्वचा, चक्षु, जिढा और प्राणेंद्रियों की अपने-अपने विषयों में अनुकूल रुप में प्रवृत्त प्रवृत्ति का 'काम' माना है । यह प्रवृत्ति जब संयोगादि द्वारा आनंद की विशेष प्रतीती कराती है तो प्रधान काम माना जाता है और शेष प्रवृत्तियाँ अप्रधान मानी जाती है ।"[2] "काम को स्त्री-पुरुष के संप्रयोग के पराधिन होने के उपाय की आवश्यकता रहती है और शरीर की स्थिति के लिए काम भी आहार की समानधर्मी है । अतः वात्सायन के मतानुसार इस उपाय का ज्ञान कामसूत्र से होता है ।"[3]

काम के स्वरुप एवं प्रयोजन पर विचार करने के बाद यह स्पष्ट होता है कि वात्सायन ने सैकड़ो वर्ष पूर्व काम को एक प्रवृत्ति ही माना था । इस प्रवृत्ति द्वारा आनंद की विशेष प्रचीती के हेतु ही उपाय ज्ञान की दृष्टि से कामसूत्र की रचना की थी । यह उपाय ज्ञान मानव जीवन गूढ़ एवं रहस्यमय व्यवहारों, चेष्टाओं तथा प्रवृत्तियों का ही अध्ययन प्रस्तुत करते हुए चला है । कामसूत्र की विषय सामग्री के अतंर्गत नारी मनोविज्ञान का जो स्वरुप दृष्टिगोचर होता है, वह संक्षेप में निम्नांकित है -

नारी विषयक तथ्यों का जो मनोवैज्ञानिक स्वरुप ग्रहण किया जा सकता है, वह यह है कि नारी को काम-प्रवृत्त करने के हेतु वातावरण एवं प्रयत्नों की आवश्यकता होती है, जो साधारण अधिकरण के अंतर्गत आती है । कन्या, पुणर्भ एवं वेश्या की अपनी अपनी कमजोरियाँ हैं । कला ज्ञान द्वारा वातावरण की सृष्टि कर इन कमजोरियों का परिहार भी किया जा सकता है । इस कमजोरियों से

---

1. हिंदी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
2. कामसूत्र वात्सायन
3. वही

लाभ भी उढ़ाया जा सकता है - "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कला-ज्ञान उस वातावरण की सृष्टि करता है, जो व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध होता है । कला-ज्ञानी नारी, राजा से सदा सम्मानित, गुणियों से प्रशंसित, प्रार्थनिय, अभिगम्य एवं लक्ष्यभूता हो जाती है । पतियों को वश में कर सकती है तथा वियोग काल एवं निर्वेदावस्था में भी आनंदपूर्वक रह सकती है ।"[1] "यह वातावरण नारी मन को विचलित भी कर सकता है । क्योंकि कलाओं में चतुर वाचाल, चाटूकारक मनुष्य बिना जान-पहचान के भी स्त्रियों के चित्त को हर सकता है ।"[2] इसका मनौविज्ञानिक भाव यह लगाया जा सकता है कि स्त्री का मन चातुर्थ, वाचाल, चाटूकारिता का भूखा होता है और इनके वशीभूत हो सकता है ।

परस्त्री रमण के कारणों से भी नारी विषयक मनोभावों का जो दुर्बल और प्रबल पक्ष दृष्टिगोचर होता है, उसके अनुसार समर्थ व्यक्ति की पत्नी अपने प्रेमी के शत्रू से पति को विमुख कर सकती है । अनुरक्त होकर अतृप्त रह जाने पर रहस्योद्घाटन द्वारा हानि पहुचाँ सकती है, कलंकित कर सकती है अथवा दोषी न होनेपर भी दोषी सिद्ध कर सकती है । अन्य प्रेमिका प्राप्ति का माध्यम अथवा दुर्लक्ष प्रेमिका प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती है । रागात्मकता के साथ पाये जानेवाले उक्त लक्षण वात्सायन द्वारा नारी के व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक स्वरुप स्पष्ट करते हैं ।

"सांप्रायोगिक अधिकरण के अंतर्गत वात्सायन ने यौन मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी को तीन नायिकाओं के रुप में देखा हैं - मृगी, वड़वा और हस्थिनी ।"[3] "भाव प्राप्ति के संबंध में स्त्रियों को भी आनंद की उपलब्धि होती है । उपाय-भेद प्राकृतिक है । पुरुष कर्ता है, युवती अधिकरण । कर्ता तथा आधार का कार्य-व्यापार अलग-अलग हैं । अतः प्राकृतिक उपायभेद से व्यापार भेद हो जाता है । पुरुष इस व्यापार में स्वयं को कर्ता समझकर अनुरक्त होती है ।"[4] "रति-सुख के विभिन्न उपायों और

---

1 कामसूत्र वात्सायन
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही

उपादानों की चर्चा से यह मनोवैज्ञानिक तथ्य निकलता है कि स्त्री की रागवृद्धि में विचित्रता सहायक होती है, क्योंकि पारस्परिक राग-विचित्रता से ही पैदा किया जाता है ।"[1]

वात्सायन द्वारा नारी की रागात्मक प्रवृत्ति को जागृत करनेवाली वस्तुओं में देशोपचार को भी महत्व दिया गया है । अतः प्रकृति के विरुद्ध देश के आचार भी नहीं करना चाहिए । इसप्रकार वात्सायन ने कालानुसार होनेवाले मनोवैज्ञानिक बदलावों को भी स्वीकार किया है । स्त्रियों में भावुकता की भी मात्रा अधिक होती है । इसलिए किसी संवेगात्मक आवेग में शीघ्र ही आ जाती है और संवेगावेग के कारण उनकी तर्क शक्ति का ऱ्हास हो जाता है ।

"स्त्री-पुरुष 'शीलावस्थापन' प्रकरण के अंतर्गत वात्सायन गोणिका पुत्र के इस मत तो उद्धृत करते हुए कि स्त्री किसी भी उज्ज्वल पुरुष को देखकर चाहती है और पुरुष भी उज्ज्वला स्त्री को देखकर चाहता है किंतु अपेक्षा से रुके हुए एक-दूसरे में प्रवृत्त नहीं होते । वह यह स्पष्ट करते है कि यह विशेषता स्त्री में अधिक होती है ।"[2] इससे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य समझा जा सकता है कि नारी में संवेग का अधिक्य होने के बाद भी प्रौढ़ता प्राप्त करने पर वह अपने संवेगों को नियंत्रित कर सकती और संवेग नियंत्रण का प्रधान कारण नारी में यह व्यावर्तन प्रवृत्ति जागृत हो जाती है ।

उपर्युक्त तथ्यों को देखते हुए कहा जा सकता है कि वात्सायन द्वारा कामसूत्र का सृजन करते समय नारी का जो स्वरुप उपस्थित किया गया, वह केवल कामशास्त्रीय ही नहीं, मनोवैज्ञानिक भी था । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नारी विषयक मनोवैज्ञानिक सामग्री का प्राचुर्य रस सिद्धांत एवं नायिका भेद के अंतर्गत भी पाया जाता है । रस सिद्धांत और नायिका भेद के अंतर्गत का मनोवैज्ञानिक व्यवहारवादी स्वरुप और उपस्थित किया गया है, वह नारी संवेगों और मानवीय मूल-प्रवृत्तियों पर ही प्रकाश नहीं डालता, अपितु वातावरण एवं तात्कालीन संस्कृति से उत्पन्न प्रभावों के अंतर्गत पाये जानेवाले व्यवहारवादी अंतर भी स्पष्ट करता है ।

फ्रायड़ की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति नारी मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी एक नवीन दृष्टिकोन का वैज्ञानिकसूत्रपात करती है । यद्यपि फ्रायड़ के पूर्व नारी यौन-प्रवृत्ति को लेकर अनेक व्यक्तियों द्वारा विभिन्न मत रखे गये हैं । उनके इन मतों में वैज्ञानिकता का अभाव हैं - "17 वीं शताब्दी के

---

1. कामसूत्र वात्सायन
2. वही

अधिकतर चिकित्सकों ने निश्चित रुप से कहा है कि इच्छा एवं आनंद दोनों ही स्त्रियों में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं ।"[1] स्त्री मनोवैज्ञानिक एलन के (Ellen Key) के अनुसार - "स्त्री की प्रेम-प्रवृत्ति मौन होकर भी अधिक बलवती होती है ।"[2] किश के मतानुसार - "नारी में यौन-प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि जीवन काल तक अपनी मूल शक्ति द्वारा नारी प्रवृत्ति को प्रभावित करती रहती है ।"[3]

नारी की यौन प्रवृत्ति को लेकर मत-मतांतर है । इसको लेकर फ्रायड़ द्वारा जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, वह संक्षेप ने निम्नांकित है -

"मनुष्य की मूल शक्ति कामशक्ति है । इसके सुचारु रुप से प्रकाशन करने पर ही मनुष्य स्वस्थ रहता है । इसके प्रकाशन में बाधा होने से विक्षिप्तता तथा अन्य मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है । कामशक्ति के प्रकाशन की चार अवस्थाएँ है - आत्मप्रेम, माता-पिता का प्रेम, समलिंगी प्रेम और विषमलिंगी प्रेम ।"[4]

"फ्रायड़ की धारणा है कि सभी मानसिक रोगों का प्रधान कारण 'काम' की मनोवृत्ति में विकार पैदा हो जाना है । विकृत काम भावना ही रोग है ।"[5] "विकृतियों के कारण यौन उद्देश्य सक्रिय एवं निष्क्रिय रुपों में मिलता है । इन विकृतियों में कामजन्य प्रिय पीड़न एवं कामजन्य आत्मपीड़न का महत्वपूर्ण स्थान है ।"[6] "विकृतियाँ इस बात को स्पष्ट करती है कि यौन-प्रवृतियों को कुछ मानसिक शक्तियों द्वारा रुढ़ होना पड़ता है । जिनमें लज्जा और अरुचि प्रमुख है ।"[7]

फ्रायड़ के अनुसार यौन-कर्म की दृष्टि से कुछ स्त्री-पुरुष समलिंगी के प्रति लगाव रखते हैं । इस प्रकार की विरोधी यौन भावना को 'इनवर्डस्' की संज्ञा प्रदान की गई है और उनकी इस प्रवृत्ति को 'इन्वर्शन" माना है । स्त्रियों में पाई जानेवाली समलिंगी रति-भावना इसी का परिणाम है ।

फ्रायड़ की शिष्या हेलन का मानना है - "स्त्रियों का समलिंगी रति-भावना की दृष्टि से उनके अंतर को स्पष्ट करते हुए दो भागों में विभक्त किया गया हैं - 1) इसमें वह स्त्रियाँ आती है, जो अपने

---

1. सायकॉलोजी आफ सेक्स-2
2. वही
3. वही
4. आधुनिक मनोविज्ञान - लालजीराम शुक्ल
5. वही
6. वही
7. वही

उद्देश्य एवं आचरण दोनों ही में मर्दानगी का प्रदर्शन करती है । उनकी शारिरिक बनावट से भी यही व्यक्त होता है । 2) वह स्त्रियाँ है, जिनकी शारीरिक बनावट तो नारी सुलभ होती है वरन् उनका व्यवहार मर्गानगी का प्रदर्शन करता है । यह समलिंगी रतिशिलता या तो तरुणावस्था में अर्जित व्यवहार के अंतर्गत बाद के जीवन में भी स्त्री-सुलभ आचरण के भीतर चलती रहती है या न्युनाधिक मर्दानी आचरण ग्रहण कर लेती है ।"[1] इस प्रकार के प्रदर्शन द्वारा ये स्त्रियाँ अपनी लैगिंगहीनता को दबाने का प्रयत्न करती है । स्त्रियों का समलिंगी रति-कर्म विषम रति-कर्म कही अधिक भावुक एवं भयंकर होता है ।

नारी मनोवैज्ञानिक को समझने के लिए किशोरावस्था या तरुणावस्था अधिक सिद्ध होती है । इस अवस्था में शारीरिक और मानसिक कुछ मूल प्रवृतियों के शीघ्र विकास का फल होता है । इसके साथ ही उनके जीवन पर उसका प्रभाव या परिणाम दिखाई देने लगते हैं -"सबसे विशेष बात यह है कि उसके व्यवहार पर प्रभाव पड़ने लगता है । मानसिक अशांति, असमाजिकता या एकांतवास के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं । दूसरों द्वारा दिये गये कार्यों के प्रति अरुचि, हट, क्रोध, आलस्, उदासिनता, अपने से घृणा तथा समाज के प्रति एक प्रकार का द्वेषभाव उदित होने लगता है । काम संबंधी जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है, गाल फुलाकर एक कोने में बैठ़ने की आदत और भावुकतावश अथवा अपना विद्रोह प्रकट करने के लिए वे प्राय: आँखों से आँसू ले आया करती है ।"[2]

किशोरावस्था में ही नारी में चिंता, भय, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, चिढ़, जिज्ञासा, स्नेह एवं आनंद रुपी संवेगों का प्रादुर्भाव हो जाता है । प्राय: स्त्रिया पुरुषों से अधिक भावुक होती है । किसी संवेगात्मक आवेग में वे शीघ्र आ जाती हैं अस्तु प्रौढ़ता करने पर स्त्रियाँ अपने संवेगों पर पुरुषों की अपेक्षा अधिक नियंत्रण रखती है ।

प्रस्तुत बातों को ध्यान में रखते हुए जब हम नारी के मनोवैज्ञानिक विकास पर नज़र ड़ालते है तो वात्सायन से फ्रायड़ तथा उसके बाद की मान्यताएँ यही स्पष्ट करती है कि जहाँ तक नारी के मनोवैज्ञानिक विकास का सवाल है, मनोविश्लेषण द्वारा कई गुत्थियाँ दृष्टिगोतर हुई हैं । मनोयौनिक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि नारी परंपरागत धारणा वास्तव में परंपरागत

---

1. सायकॉलोजी आफ वुमन
2. किशोर मनोविज्ञान की भूमिका - डॉ. सय्युप्रसाद दौबे

विश्वास मात्र है, वैज्ञानिक सत्य नहीं । शैक्षणिक, सांस्कृतिक अथवा अन्य फ्रकार की सुविधाओं के अभाव में शारीरिक गहन के अंतर तथा वातावरण भिन्नता के प्रभाव से ही नारी के व्यक्तित्व विकास एवं संवेगात्मक स्वरुप में कुछ वैभिन्न दृष्टिगोचर होती है । किंतु वह हीनता नहीं है । जहाँ समानता की भूमि पर, सम वातावरण में सम सुविधाओं का लाभ उठ़ा रही है, वहाँ उसने मनोवैज्ञानिक रुप से परंपरागत हीनता के विश्वास को उखाड़ फेका है ।

3.1 नारी की समस्या और समाधान -

हिंदी साहित्य में नारी की जीवन विशद समस्याओं को सभी विधाओं में पर्याप्त रुप से अभिव्यक्ति प्रदान की जा रही हैं । समकालीन हिंदी उपन्यासों में अनेक रचनाकारों द्वारा बदलती परिस्थितियों के अनुकूल नारी जीवन की मूल संवेदनाओं को उजागर किया जा रहा है । वर्तमान युग में स्त्री-पुरुष के संबंधों में एक प्रकार का बदलाव आया है । इस बदलाव के साथ-साथ कई प्रकार की जटिल गुत्थियाँ और समस्याएँ भी निर्मित हो रही है । शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई है । जिसके फलस्वरुप आज की नारी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही है । किंतु पश्चिमी जीवन के आकर्षक मापदंड, अर्थ, दबाव, शहरी जिंदगी का बेरुक्ष रुप और टूटते परिवार की यातनाओं ने नारी में जीवन के कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न की है । इसी के फलस्वरुप स्त्री-पुरुष के आपसी संबंध कही टूट रहे हैं तो कही टूटकर पुनः स्थापित हो रहे हैं । इन बनते-बिगड़ते संबंधों के माध्यम से नारी पात्रों की मूल संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के सफल प्रयास हिंदी साहित्य के कई उपन्यासकार लेखक एवं लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में किया हैं ।

हम यहाँ उदाहरण के तौर पर कुछ समस्याओं को देख सकते हैं । स्त्री-पुरुष संबंधो में शक या संदेह, अहंभाव, असंगत-कल्पनाएँ और आसक्ति, विरक्ति के अनेक मनोभाव टकराव ला सकते हैं । प्रायः पत्नी की बौद्धिकता या स्वतंत्र व्यक्तित्व भी पुरुष के अंह को चोटिल बना देता है । पति-पत्नी के बीच में तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति अथवा शक भी संबंधों में दरार ड़ाल देती है । घर के बाहर पुरुषों के साथ पत्नी का नौकरी करना भी परिवार में तनाव का कारण बनता है ।

नारी जीवन के संघर्ष के अनेक आयाम है । कभी बेटी के रुप में गर्भ में ही मार दिया जाता हैं, तो कभी बहु के रुप में जिंदा जलाई जाती है या कभी उसे मानसिक तथा शारीरिक यातनाएँ देकर

परेशान कर आत्महत्या के लिए प्रवृत्त किया जाता है । भारत में दहेज को लेकर मारी गई बहूओं की संख्या कम नहीं है । समकालीन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इन समस्याओं को बेबाकी से मुखरित किया है ।

स्त्री-पुरुष के बदलते जीवन-मूल्य और मानदंड़ों ने जो स्थितियाँ पैदा कि हैं उनमें आज की नारी कई बार अपने आपको असुरक्षित और विसंगत प्रतित करती है । पुरुषों की विकृत दृष्टिहीन भावना से नारी भोग की सामग्री बन कर रह जाती है ।

संवैधानिक अधिकारों और नारी-शिक्षा के विस्तार से यद्यपि पुरानी स्थितियों में परिवर्तन हुआ हैं, किंतु सामाजिक संदर्भों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में नारी आज भी संस्कारगत जड़त्व से मुक्त नहीं हुई है ।

स्त्री स्वातंत्र्य और स्त्री व्यक्तित्व की एक अलग पहचान के लिए आवश्यक हैं कि स्त्री की नैसर्गिक क्षमता का स्वाभाविक विकास हो उसकी रुचियाँ, उसकी प्रकृति, जीवन को सुंदर बनाने की कल्पना और उसकी निर्माण क्षमता को सही दिशा मिले ।

संक्षेप में समकालीन युग में उपन्यासकार यथार्थ की जमीन पर सामान्य मनुष्या पर लिखने को प्रेरित हुआ । सामाजिक, राजनीतिक व्यंग्य पर भी प्रकाश डाला गया । इस तरह समकालीन हिंदी साहित्य में उपन्यास का अपना गहरा प्रभाव रहा ।

3.2 समकालीन हिंदी साहित्य और नारी-विमर्श -

स्त्री की महत्ता कितनी ही क्यों न हो, परंतु समाज में उसे वह प्रतिष्ठा नहीं मिलती है, जो मिलनी चाहिए । वैसे नारी का जीवन विभिन्न भूमिकाओं में विभाजित हैं । वह किसी की बेटी, बहन, पत्नी, माता के रुप में होती है । नारी का कुदरती गुण सेवाभाव होता है । पति और परिवार के हित में वह अपना जीवन व्यतीत करती है । सच्चे गुरु के रुप में नारी का योगदान विशेष है ।

बाल्यावस्था में लड़कियों को कड़े अनुशासन में रखा जाता है । उन्हें संयम सिखाया जाता है । छोटी उम्र में ही उसे 'तू तो बड़ी हो गयी है' कहकर वयस्क बना दिया जाता है । अत: छोटी उम्र में ही लड़कियाँ आज्ञापालक, जिम्मेदार और सहयोगी बन जाती है । लड़की जब किशोरी बन जाती है, तब

औरों की इच्छाओं पर ज्यादा ध्यान देने लगती है । किसको क्या अच्छा लगेगा ? इस बात को सोचकर परावलंबी हो जाती है । अपनी माँ के आदर्शों पर चलने लगती है । माँ को देखते-देखते वह भी अपनी आकांक्षाओं से दूर होकर अपने आपको दूसरे के लिए समर्पित कर देती है । शादी के बाद वह पति तथा उनके परिवार की इच्छाओं के अनुसार अपने आपको ढ़ालती है । संतापन प्राप्ति के बाद तो वह अपना व्यक्तित्व समाप्त कर देती है । वह अपने परिवार के प्रति इतना कुछ करती है और वे ही लोग जब उसकी उपेक्षा करते है तब वह एकदम निराश हो जाती है । अपने जीवन में रिक्तता का अनुभव करती है । वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान सर्वोच्च था । वैदिक काल में सतीप्रथा का उल्लेख नहीं मिलता । परंतु महाभारत में पाडू की पत्नी माद्री के सती होने का उदाहरण मिलता है । रामायण में राजा दशरथ की मृत्यु के बाद कोई रानी सती नहीं हुई थी । मध्यकाल में तो नारियों की स्थिति उत्तरोत्तर गिरती गई । अरबों तथा मुसलमानों के आक्रमण के कारण स्त्रियों को सदैव सुरक्षित रखा गया । घरेलु कार्यों में ही व्यस्त रखा गया । उस युग में बालविवाह तथा सतीप्रथा का भी प्रचार होने लगा था । सामाजिक व्यवस्था में वेश्यावृत्ति का भी स्थान था । प्रत्येक नगर में अलग-अलग स्थान पर वेश्याओं का निवास स्थान रहता था । उनसे संपर्क रखना अच्छे लोगों के चरित्र का अंश बन गया था ।

वर्तमान समय में ही स्त्रियों को अपनी योग्यता सिद्ध करने का अवसर प्राप्त हुआ है । कल्पना चावला, सुनिता विलियम्स् ने अवकाश में नये अविष्कार करके अपनी योग्यता को सिद्ध किया है । किरण बेदी, बरखा दत्त जैसी नारियाँ भी सफलता के ज्वलंत उदाहरण है । इस प्रकार समकालीन साहित्य में, गद्य साहित्य की विधाओं में नारी स्वरुप की चर्चा की गई है । नारी अबला थी किंतु अब नहीं है । अब उन्हें अपनी शक्तियों को विकसित करने का अवसर प्राप्त हुआ है । आजकी नारियाँ चाहे वह गाँव में रहनेवाली हो या शहर में वे कर्तव्यनिष्ठ है, संवेदनशील है । अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व संभालानेवाली है । आज की नारियाँ जीवन की व्यस्तता में भी अपना कर्तव्य नहीं भूलती । कर्तव्यशील के साथ उन्हें संवेदनशीलता भी हैं ।

विषय की व्यापकता को देखते हुए मैंने क्रमशः मृदुला गर्ग, शशिप्रभा शास्त्री, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा, कृष्णा सोबती, मन्नु भंडारी, दीप्ति खंडेलवाल, डॉ. विद्या चौहान के साहित्य के कथ्य पर ध्यान केंद्रित किया हैं ।

1. मृदुला गर्ग -

आप कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार, नाटककार और संस्मरणकार भी है ।

मृदुला गर्ग ने स्त्री-पुरुष संबंध में नारी की प्रणयानुभूति, नारी का दमन, शोषण, नारी स्वातंत्र्य की भावना, विद्रोह, संतान मोह, प्रसव वेदना, दांपत्य संबंध, दांपत्येत्तर संबंध पर लिखा है ।

स्त्री जीवन में मातृत्व की स्थिति पर एक लेख में लिखा है - "जन्म और मृत्यु के समय तो हर कोई अकेला होता है, पर स्त्री के पास एक तीसरा अकेलापन भी है, जन्म गेने का अकेलापन, अकेली औरत अपने भीतर से एक संपूर्ण मानव को जन्म देती है, पर उसे बड़ा करके छोड़ देने में दुबारा अकेले में ही उसकी सार्थकता है ।"[1] मृत्यु के बाद बच्चों की देखभाल के लिए बेटे के पास रहती है । आग्रह करके सुकांत को दूसरे विवाह के लिए तैयार करती है ।

2. राजी सेठी -

इनकी नायिकाएँ बगावत करती है, चुपचाप सहन करनेवाली पारंपारिक भारतीय नारियाँ नहीं है । इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ प्रतिकात्मक हैं । इनकी नायिकाएँ स्वयं रक्षा करना जानती हैं ।

3. मैत्रेयी पुष्पा -

मैत्रेयी पुष्पा ने बीसवी शताब्दी के अंतिम दशक से लेकर आज तक समकालीन संदर्भों में नारी की स्थिति और गति को अभुव्यक्ति दी है । इन्होंने विवाह संस्था में नारी के अस्तित्व, अस्मिता, व्यक्तित्व की स्वतंत्रता तथा स्वत्व रक्षा जैसे मानवोचित बुनियादी अधिकारों की सुरक्षा को अहमियत दी है ।

स्मृति देश, बेतवा बती रही और इंदमम उपन्यास से मैत्रेयी पुष्पाजी की पहचान बनी है ।

4. कृष्णा सोबती -

कृष्णा सोबती की रचनाओं में नारी का यथार्थ हाड़-मांस की जीवंत महिलाएँ है, जो अपनी अंतरंग उलझने और द्वंवद्वात्मकता से भरी है । यही उनके अपने जीवन का वजुद है ।

---

1. समकालीन हिंदी साहित्य और नारी-विमर्श - डॉ. प्रिति बिपिनचंद्र नायक

5. उषा प्रियवंदा -

इन्होंने भारतीय दृष्टिकोन से नारी के अकेलेपन को कुरेदा है । कुंठाग्रस्तता, अतृप्त कामवासना, द्वंवद्वात्मकता से भरे इनके नारी चरित्र हैं ।

3.4 आज़ाद देश और आज़ाद महिला में फर्क -

"आज़ाद होना और आज़ादी का अपने जीवन में एहसास करना दो अलग चीज़ें है । यह गर्व की बात है कि हम आज़ाद भारत में पैदा हुए, लेकिन यह भी उतना ही शर्मनाक है कि आज भी महिलाओं को वे अधिकार नहीं मिले, जिनकी वे हकादार है । सच कहूँ तो इसके लिए हम खुद भी जिम्मेदार है । घर में अगर एक लड़का और एक लड़की है तो उनकी परवरिश में ही अंतर किया जाता है । यह बिना जाने की लड़की क्या चाहती है । माँ-बाप अपने विचार उसके ऊपर लादते जाते हैं । अर्थात् शुरु से ही उन्हे किसी दूसरे के आदेश मानने की आदत पड़ने लगती है ।"[1] यह सोच बाद में इतनी हावी हो जाती है कि पहले की वह चाहते हुएँ भी अपना निर्णय नहीं ले पाती । यह अलग बात है कि पहले की अपेक्षाएँ अब ज्यादा स्वावलंबी हो गई है । लेकिन यह कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है । आज भी अगर कोई लड़की अपने मायकेवाले को आर्थिक मदद देना चाहे तो उसे ससुरालवालों से अमुमति लेनी पड़ती है । अगर अनुमति मिल भी जाय तो मायकेवाले अपनी बेटी से मदद लेना तौहिन समझते है । आज़ादी के समय महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है । यह सुधार हकीकत में ही हुआ है । अनगिनत भारतीय महिलाओं ने अंतर्राष्ट्रीय मंच पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई हैं, लेकिन पिछड़े वर्ग की महिलाओं की दशा अभी भी शोचनीय है । सामाजिक जागरुकता के अभाव के कारण महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए बने कानुन भी बेअसर साबित हुए है । जहाँ एक शिक्षा की बात है, तो मुझे नहीं लगता कि कोई बातों में ज्यादा सुधार हुआ है । शिक्षा से सबकुछ बदला जा सकता है तो शायद समाज में कोई बुराई नहीं होगी ।

---

1. अमर उजाला, रुपायन, 14 अगस्त, 2009

अध्याय चतुर्थ

मित्रो मरजानी उपन्यास में नारी विमर्श तथा अधुनातन यथार्थ

4.1 'मित्रो' हिंदी कथा साहित्य का अनोखा नारी पात्र

कृष्णा सोबती का बहुचर्चित उपन्यास 'मित्रो मरजानी' सन् 1967 में प्रकाशित हुआ है । कृष्णाजी ने 'मित्रो' के माध्यम से अतृप्त यौन और अप्राप्त मातृत्व से ग्रस्त नारी की हृदयस्पर्शी स्थिति, कुंठाग्रस्त मनस्थिति तथा संत्रास का संवेदनशील चित्रण किया है ।

इस उपन्यास में नारी की नयी पहचान तथा आज की उसकी क्या परिस्थिति है, उसका वर्णन किया गया है । इसमें 'मित्रो' ही ऐसा पात्र है, जो अधिकार के लिए न लड़ाई करती और नही गिड़गिड़ाती है बल्कि वह आत्मबल प्राप्त करके चुनौती देती है । 'मित्रो मरजानी' उपन्यास विधा के लिए बहुत बड़ी देन है -"यह अनुठ़ी नारी पात्र है जिसने नारी चित्र के सभी परंपरागत प्रतिमानों और उपमानों से पृथक एवं एक नवीन रुप धारण किया है ।"[1]

'मित्रो मरजानी' का कथानक संयुक्त परिवार का है । गुरुदास और उसकी पत्नी धनवंती तीन पुत्रों तथा उनकी बहूओं के साथ रहते हैं । उनकी एक लड़की भी है, जिसका नाम जनको है । बड़ा बेटा बनवारीलाल और उसकी पत्नी सुहागवंतती का जीवन आदर्श दांपत्य जीवन जीते हैं । सुहागवंती समझदार और खानदान ध्यान रखनेवाली है । वह एक भले मन व अच्छे स्वभाववाली आदर्श बहू है - "देवरानी बहू बेटियों के लिए ... लच्छामन की लकीर ... फलाँगी नहीं की ।"[2]

सबसे छोटा गुलजारीलाल की पत्नी फुलवंती का स्वभाव घमंड़ी है । उसकी अपने ससुराल में किसी से नहीं बनती । उसे परिवार की इज्जत से ज्यादा अपने गहनों से लगाव है । घरवालों को परेशान करना व पति को अपने इशारे पर नचाना ही उसका उद्देश्य है । ससुराल में नित कलह करती रहती है और अंत में पति को लेकर मायके चली जाती है - "अब अपनी आँखों देख लो तुम्हारी माँ ...

1. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में यथार्थ के विभिन्न रुप - नीहार गीते
2. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

भौजाई मुझे फाड़-फाड़ खाती है । मैंने आज तक बड़ा सब्र रखा है पर कान खोलकर सुन लो मैं सिंगार पट्टी न छोडूँगी ।"[1]

मंझले सरदारीलाल की पत्नी सुमित्रावंती उर्फ मित्रो है । यही 'मित्रो' उपन्यास की नायिका है और उपन्यास की संपूर्ण कथा मित्रो के इर्द-गिर्द घमती है । मित्रो में यौवन की अमिट प्यास है । माँ के विलासपूर्ण घर के वातावरण में बचपन बिताने से पति सरहारीलाल उसकी शारीरिक प्यास को पूर्ण करने में असमर्थ है । मित्रो एकदम बाचाल औरत है । वह किसी से नहीं ड़रती है । अपनी सारी बातें बिना शरमाएँ कहती है । मित्रो सुहाग की खटिया के पास आकर जेठ़ानी से कहती है - "जेठ़ानी तुम्हारे देवर से बगलोल कोई और दुजा न होगा, न दु:ख-सुख, न प्रीति-प्यार, न जलन-प्यास, बस आये दिन धोल-धप्पा ... लानत ... मलानत ।"[2]

वह अपने कपड़े उतारकर फेंकती है तथा फटाक से बिछाने पर सीधी लेटकर अपनी जेठ़ानी से बेहिचक कहती है -"सच कहना, जेठ़ानी सुहागवंती क्या ऐसी छाती किसी और की भी है ।"[3] सुहागवंती मित्रो को समझाती है कि तू भी और स्त्रियों जैसी है । तुझ में और अन्य औरतों में कोई फर्क नहीं है । सारी औरतें एक जैसी होती हैं ।

सुहागवंती के इस कथन पर मित्रो निर्लज्जता से बोलती है -"जेठ़ानी मेरे जेठ से कह रखना, जब तक मित्रो के पास यह इलाही ताकत है , मित्रो मरती नहीं ।"[4] भले स्वभाववाली जेठ़ानी ने मित्रो को समझाने रणचंड़ी बनकर कड़ककर सुनाती है -"चूप रे धर्म-पिट्टी उठकर कपडे पहन, नहीं तो

मुझसे बुरा कोई न होगा ।"[5] इनता सबकुछ होने पर भी बिछाने पर पड़ी-पड़ी अपनी बातें खुलकर सुहागवंती से कहकर रहती है । अपनी शारीरिक भूख न मिटने की वजह से वह बेचैन होती है, और हमेशा उसी में लिप्त रहती है -"अब तुम्ही बताओं जेठ़ानी, तुम जैसा सतबल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ ? देवर

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही

तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता । बहुत हुआ हप्ते-पखवारे ... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास है कि मछली सी तड़पती हूँ ।"[1]

'मित्रो' अपने इस तरह के जीवन से परेशान थी अर्थात् असंतुष्ट थी । उसे उच्छृखलता से जीने की आदत थी । वह परंपरागत रुढ़ियों और सामाजिकता, नैतिकता का विरोध करती है । वह समाज की संकीर्णता को नकारती है और भली-भाँति परिचित है । फिर भी सिर्फ समर्पण ही सबकुछ नहीं मानती है तो आत्मबल भी प्राप्त करती है । डॉ. अनिता ने अपने शोध-प्रबंध में 'मित्रो मरजानी' के आवरण पृष्ठ से प्रकाशक का मंतव्य दिया है -"यह न रवींद्र की ओस जैसी नारी है, न शरत् या जैनेंद्र की विद्रोहिणी गुत्थी । इसे आदर्श का कोई मोह नहीं है और न समाज का भय, न ईश्वर का, उसके लिए किसी विशेषण की आवश्यकता नहीं है । वह मात्र मांस-मज्जा से बनी एक नारी है । जिसमें स्नेह भी है, ममता भी, माँ बनने की होश भी, एक अविरत बहती वासना सरिता भी ।"[2]

'मित्रो' बाहर से पत्थर के समान है तो अंदर से कोमल है । एक बार वह दे देती है । सरदारीलाल और मित्रो में हमेशा झगड़ा होता रहता है । सरदारी मित्रो की हरकतों से परेशान है तो गुरुदास और धनवंती मजबूर है । मित्रो की वजह से घर की तरफ कोई भी अच्छी नजर से देखता नहीं है । कई नौजवान भौरे की तरह मंड़राते रहते हैं । पुरुषों से हँसते-खेलने में रुचि रखते हैं । मित्रों के घरवाले उसके इस व्यवहार से तंग आ जाते हैं और उसे मायके भेजने का निर्णय लेते हैं। मित्रो की माँ मित्रो की जवानी व उसकी प्यास के लिए प्रेमी को तैयार करती है । मित्रो की माँ अपना जीवन खिलौने की तरह बिताती है । वह मित्रो को भी अपनी तरह बनाना चाहती है ।

लेकिन मित्रो समझती है और पछताती है तथा अपने आपको रोकती है । इस बात को लेकर मित्रो अपनी माँ को कोसती हुई कहती है -"तू सिद्ध भौरों की चेली अब अपनी खाली कड़ाही में मेरी और मेरे खसम की मछली तलेगी ? सो न होगा । भाबो कहे देती हू ।"[3]

फट से निकलकर नशे में पड़पती सरदारीलाल की तरफ बढ़ची है । पति को अपने पास लेकर मित्रो उसके हर अवयव को सहलाकर उसरी छाती नें मुँह छिपा लेती है । फिर अंगड़ाई लेकर उठ

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य में स्त्री का स्वरुप - डॉ. अनिता
3. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

बैठती है और हाथ-पाँव दबाकर सिर चुमकर पहती हे - "कहीं मेरे साहिबजी को नजर न लग जाये इस मित्रो मरजानी ।"[1]

मित्रो एक ऐसी नारी पात्र है, जो उद्दाम, अतृप्त वासना की प्रतीक है मित्रो का व्यक्तित्व है । छोटी बहु की बड़ी बहू से गहनों के नाम पर ओछी लड़ाई को मुखर और हिकारत से वह देखती है, उससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि शुद्ध व्यावहारिकता और दुनियादारी के नाम पर टुच्चे समझौचे करनेवाला जीव नहीं । कोई और भी बात है जो सैयाजी से उसे बाँध रखती है । क्या है वह बात ? बच्चों के से पारदर्शी लाग-लपेट से मुक्त उसके सैयाजी एक लंबे-चौड़े, मुश्तंड़ शिशु ही तो है, जो महीन बातें समझते नहीं और जिन्हे आसानी से छला भी जा सकता है ।

"पाँच-सात क्या मेरे तो सौ-पच्चास होंगे । मेरा बस चले तो नहीं हो जाता - इतना समझने का विवेक उसे है और यह मांपने की दुनियादारी भी कि बुढ़ापे मे इस 'ठठरी ठंड़ी भट्टी' का वाली वारस नहीं होता । इसलिए घर छोड़ना बेकार है । इस संबंध में अनामिका लिखती है -"औरत की देह से जुड़े सत्यों का आकलन कालिदास, लारेंस और फ्रेंच फेमिनिस्टा के यहाँ तो मिल जाता है, पर अपने यहाँ इधर के कथा साहित्य में दैहिक की परंपराओं को अंतर्जगत् के मर्मोद्घाटन से एकाकार करके देखने की परंपरा नहीं के बराबर रही है ... क्या कहे कोई 'मित्रो मरजानी' सी देह हाथ की पुरी औरत अपनी अतृप्त उद्दाम जिजीविषा ।" [2]

मित्रो अन्य नारी पात्रों से बिल्कुल अलग है । क्योंकि वह अपने इस उपन्यास में सबसे अलग और नारी की नयी पहचान के रुप में है । 'मित्रो' निड़र पात्र है और साहसी भी है । 'मित्रो' के माध्यम से नारी जीवन की प्यास को पहचानने की कोशिश की गई है । यहाँ तक कि एक स्त्री पति से अतृप्त रहने के कारण अपने जीवन को विभिन्न मोड़ो की ओर ले जाती है । एक विभिन्न शिल्प के माध्यम से कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी' का चित्रण किया है और कृष्णाजी चित्रित करना चाहती है कि केवल आदर्शों के सहारे जिया जा सकता है । यथार्थ की भंयकरता आदमी को तोड़ देती है और वह विभ्रांत होकर कुछ भी करने लगता है । टूटे हुए आदर्श ना तो दिशा दे सकते है, ना आदर्श । कोई भी

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में यथार्थ के विभिन्न रुप - नीहार गीते

व्यक्ति अभाव और घूटन की परिस्थिति में अधिक दिन नहीं जी सकता । वह कभी ना कभी मन के अनुसार जीने का प्रयत्न करता है । इस यथार्थ में भी एक आस्था का स्वर है ।

डॉ. धर्मध्वज त्रिपाठी कहते है - "मित्रो का चरित्र एक चुनौती बन गया है, जिसका निर्वाह करना आसान कार्य नही है । यह चुनौतीपूर्ण नियति ही नाटकीयता की सृष्टि में सहायक हुई है ।"[1] डॉ. पारुकांत देसाई कहते है कि इसे कृष्णाजी की 'बोल्डनेस' पर भारतीय संस्कारों व परंपराओं की विजय ही मानना चाहिए । लेकिन मेरे विचार से कृष्णाजी की बोल्डनेस भारतीय संस्कारों एवं परंपराओं पर कुठाराघात करती हैं । मित्रो एक विवाहित स्त्री है एवं संयुक्त परिवार में जीति है । अपनों से बड़ों के साथ उसका यह वार्तालाप किसी प्रकार क्षम्य नहीं । मित्रो गिरने से थोडा सा बच जाती है और उसकी काम भोगी अतृप्त वासना के बावजूद वह अपने को गिरने नहीं देती । वह अपने पति के अतिरिक्त किसी और से अपनी वासना की तृप्ति नहीं करती ।

4.2 नारी की सामाजिक स्थिति एवं गति -

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान अनन्य असाधारण रहा है । हर काल में नारी समाज में पूजनीय रही हैं । 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में भी नारी को अत्यंत महत्व दिया गया है । नारी परिवार, समाज और संस्कृति की धुरी है । वह समाज के साथ ही साहित्य में भी प्रमुख आधार रखती है । समाज, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, जीवन भी उसी से संचालित होता है ।

नारियों की सामाजिक स्थिति और उनके चित्रण की परंपरा बदलती रही है । सामाजिक जीवन और समय की गति का प्रभाव उस पर दिखाई देता है । नारी भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अंग रही है । नारियों के लिए कई युद्ध और कई संधियाँ होती आई है । समाज में भी उसके बिना कोई काम नहीं होता है ।

सामाजिक स्थितियों के अनुसार नारी चित्रण की परंपरा में उतार-चढ़ाव आते रहे है । कभी नारियों को समाज में सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि स्थान दिया गया है, तो कभी संत कवियों ने उसकी छाया

1. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में यथार्थ के विभिन्न रुप - नीहार गीते

तक संज्ञाएँ भी दी गई है । राजाओं ने उसे विलासिता का साधन माना है तो कहीं आधुनिक काल में आकर वही नारी बराबर का दर्जा पाने की योग्य पहचान बनी है ।

आज के वर्तमान युग में नारियों की स्थिति का चित्रण होने लगा हैं । 'मित्रो' वर्तमान काल के साहित्य जगत् के सभी पात्रों से एकदम अलग अपितु यथार्थ का उद्घाटन करनेवाली आज की नारी है । 'मित्रो मरजानी' यह उपन्यास स्त्री-पुरुष की प्रकृति-प्रदत्त इच्छा, कामवासना की अतृप्ति का विवेचन है । आज तक उपन्यासों में तथा साहित्य जगत् में पुरुष की ही आवाज सुनाई देती थी ।

सामाजिक और मानवीय ढाँचे को लेकर पुरुषसत्ताक समाज में रुका पक्ष दबा हुआ नजर आता था । पुरुषों जैसी स्वच्छंदता स्त्री में देखना सामाजिक व्यवस्था में अनुरुप नहीं लगी थी । अपितु 'मित्रो मरजानी' के द्वारा कृष्णाजी ने इसको बखुबी से तोड़ा है और स्थापित भी किया है । कृष्णा सोबती लिखती है - "यहाँ साहित्य मानवीय और सामाजिक पक्ष का यकीनन विरोध करता है । आत्माअभिव्यक्ति किसी भी देह का अधिकार है । इसके तहत स्त्री भी पुरुष संवेदना को समझने-बुझने की हकादर है । साहित्य मात्र पुरुष का एकालाप नहीं हैं । इस लोक में स्त्री और पुरुष दोनों का सांझा संवाद है ।"[1]

इसमें 'मित्रो' का वासनात्मक प्रकृति का पता चलता है । वर्तमान उपन्यास साहित्य इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि विषय-वस्तु के लिए वह न विघटनवादी दांपत्य संबंधों की उबाऊ आकृति करता है और न अभिव्यक्ति के औजारों के रुप में आत्मदया, आत्मपीड़ा, समर्पण है । बेशक आखिरी दशक के हिंदी कथा साहित्य को स्त्री तमाम कोशिशों के बाद सहचर पुरुष को उतना मानवीय नहीं बन सकी । लेकिन अपने लिए आसन्नतापूर्वक जीवन जीने का रास्ता अवश्य तलाशती है । सेक्स ही माँग न प्रतिक्रियात्मक है न अमानवीय वरन् सेक्स का न होना ही मानवीय संकटों की शुरुआत का संकेत है । इसकी नायिका 'मित्रो' न सती-साध्वी है न वेश्या है । वह केवल नारी है, काम भावना की तृप्ति के लिए पति से संतुष्ट न होने पर वह पर-पुरुष से संबंध स्थापित करने झिझक अनुभव नहीं करती है । 'मित्रो' की देह में सेक्स की भुख है । इसी कारण वह पर-पुरुष से अपना संबंध स्थापित करती है । वह अपनी जीवन की सार्थकता अपनी देह को लुटाने में समझती है । जीवन को भोगने में मानती है । वैसे सुखी और सफल तथा दांपत्य जीवन के लिए यौन संतुष्टि होना अनिवार्य भी है । किंतु 'मित्रो' मुँहफट और

1. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में यथार्थ के विभिन्न रुप - नीहार गीते

निर्लज्ज भले ही हो दरअसल वह मन से नैतिकतावादी है । वह यह सहन नहीं कर पाती कि उसकी माँ उसके पति के साथ किसी भी प्रकार शारीरिक संबंध विकसित करें ।

कृष्णा सोबती सुखी दांपत्य जीवन के लिए यौन संबंध को उचित समझती है । लेखिका की मान्यता है कि दांपत्य जीवन में यौन तृप्ति न होने के कारण व्यक्ति इधर-उधर भटकता है और अनुचित मार्ग पर चलने को मजबूर हो जाता है । 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में 'मित्रो' अपने पति से शारीरिक रुप से संतुष्ट न हो पाने के कारण ही इधर-उधर भटकती है । 'मित्रो' में वासनात्मक प्रवृत्ति का पता चलता है ।

लेकिन 'मित्रो' मन से नैतिकतावादी है, उसे न किसी का मोह है और नही समाज, ईश्वर का भय है । वह अपने व्यक्तित्व को बिखरने नहीं देती । वह नारी के पुराने सभी बिंबों को चुनौती देती है ।

4.3 सामाजिक स्वच्छंदता, सामाजिकता और नैतिकता -

स्त्री-पुरुष संबंधो में सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर स्वीकृति नैतिक मान्यता कहलाती है । परंपरागत समाज व्यवस्था मे मान्य नियमों के आधार ही सामाजिक संबंधों एवं पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन होता आया है । यह नैतिक मूल्य परंपरागत होते है, जिन्हें समाज से मान्यता प्राप्त है ।

"नीति के आधार पर ही संबंधों को मान्यता प्राप्त होती है । जिसे समाज स्वीकार करता है । किंतु साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों को नैतिक मान्यता साहित्य की दृष्टि से प्राप्त होती है । सामाजिक जीवन में हो रहे परिवर्तनों से साहित्यकार भी प्रभावित होता है । युग एवं परिवेश के अनुरुप साहित्यकार अपनी नैतिक विचारधारा को साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है ।"[1]

यही विचारधारा उनके उपन्यासों के पात्रों के नैतिक संघर्ष और समस्याओं को निर्धारित करती है ।

मानव समाज में नैतिक-मूल्य विशिष्ट सामाजिक मूल्य है । प्रत्येक समाज में नैति मूल्यों की विशिष्ट परंपरा होती हैं । श्लील-अश्लिल, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, आदि के अपने मानदंड होते हैं । समाज की स्वच्छंदता पर नैतिक मूल्यों का नियंत्रण होता है । भारतीय समाज की

1. हिंदी उपन्यासकला - डॉ. प्रतापनापायण टंड़न

वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि भारतीय समाज में भी परंपरागत नैतिक मान्यताओं को बहिष्कृत करने की प्रक्रिया तेजी से फैलती जा रही है ।"[1] परंपरागत नैतिक-मूल्यों के पतन में तत्कालीन परिस्थितियों ने मुख्य भुमिका निभाई हैं ।

नये नैतिक संदर्भों का अध्ययन हम निम्न बिंदुओं के आधार पर करेंगे -

अ) युवा विद्रोह

आ) कामभावना या श्लील-अश्लिल

इ) दांपत्य संबंधों में बदलाव

ई) पाप-पुण्य की अवधारणा

उ) प्रेम और यौन संबंध

अ) युवा विद्रोह -

वर्तमान समाज में युवा वर्ग सामाजिक नैतिकता का बहिष्कार कर स्वच्छंदता या उच्छृखलता को अपनाना शान समझता है । युवाओं के रहन-सहन, खान-पान, बोलचाल आदि से भारतीयता गायब होकर उन पर पाश्च्यात्य सभ्यता हावी होती जा रही है । आधुनिक चुस्त अंग प्रदर्शन, वेशभूषा, युवा वर्ग की पहचान बन गयी है । उन्मुक्त रोमांस को प्रश्रय दिया जा रहा है । 'क्षुधा' और 'काम' मुख्य विषय बन गये है । नयी नैतिकता का आग्रह है कि धर्म काम का विरोधी ना रहे । काम भावना प्राकृतिक माँग है । पाप-पुण्य, नीति-अनिति, पवित्रता आदि से काम भावना का कोई संबंध नहीं है । ऐसा यह वर्ग मानता है । यथार्थ के नाम पर नग्नता के तह तक पहुचँने के प्रतिद्ंवद्विता मची हुई है । इस सदी का युवा विद्रोह के नाम पर अनैतिकता का पुरजोर समर्थन कर रहा है और पतनशील होता जा रहा है ।

आ) काम-भावना या श्लील-अश्लिल -

वर्तमान समय में श्लील-अश्लिल निरर्थक समझे जाने लगे हैं । मनुष्य आदिम स्थिति का पुनः उपभोग करना चाहता है । प्रेम और सेक्स में स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जा रहा है ।

1.आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य और चरित्र विकास - डॉ. बेचैन

एकाचार की भावना से मनुष्य उब गया है । वह काम संबंधों में उन्मुकता चाहता हैं । विवाहपूर्व यौन संबंधों को मान्यता दिलाने का प्रयास किया जा रहा है । विकासशील नयी पीढ़ी पूर्ण रुप से आधुनिक वातावरण में सांस ले रही है ।

इ) दांपत्य संबंधों में बदलाव -

दांपत्य जीवन संबंधी परंपरागत नैतिक मानताएँ शिथिल हो रही है । एकिनष्ठा की मांग अब अनुचित प्रतीत होती है । सभ्य दंपतियों को एक-दूसरे के आचरण के बारे में मौन धारण करना चाहिए । इतना ही नहीं वर्तमान आधुनिक परिवेश में यह धारणा भी स्वीकृत हो चुकी है कि पति और प्रेमी दो पृथक व्यक्ति हो सकते हैं । अब यह आवश्यक नहीं कि जिससे प्रेम हो उसी से विवाह भी और जिससे रिश्ते हो उससे ही प्रेम भी । युगीन प्रभाव पति-पत्नी कै नैतिक रिश्ते में भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।

ई) पाप-पुण्या की अवधारणा -

पाप-पुण्य की परिभाषा बदलने लगी है । अब पाप और पुण्य का निर्णय धर्म के आधार पर न होकर सामाजिक दृष्टि से होता है । इन सब बातो की पृष्ठभूमि में मानव की परिवर्तित होती विचारधारा कार्य कर रही है । समस्त विश्व में हो रहे भौतिक परिवर्तनों का प्रभाव मनुष्य के मानसिक जगत् को प्रभावित करता है । अत: विचारधारा में परिवर्तन आना स्वाभाविक है ।

उ) प्रेम और यौन संबंध -

पारंपारिक विचारधारा में स्त्री-पुरुष के प्रेम और यौन संबंधों को अभिन्न स्वीकार किया गया है । किंतु वर्तमान परिवेश में पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से उत्पन्न नयी विचारधारा एवं नैतिकता दोनों अलग-अलग भी स्वीकार करती है । यौन इच्छा शरीर की प्राकृतिक अवश्यकता है जिसकी तृप्ति होना आवश्यक है । आधुनिक समय में वह आवश्यक नहीं है कि जिसके साथ यौन संबंध हो उससे प्रेम हो और जिसके साथ यौन संबंध हो उससे प्रेम हो और विवाह भी या जिससे विवाह हो , उसी से प्रेम और यौन संबंध भी हो ।

"प्रत्येक को अपने मूल रुप में देखने की वैज्ञानिक दृष्टि ने वर्तमान युग में प्रेम और यौन संबंधी दृष्टिकोण को नैतिकता से मुक्ति दिला दी है । परंपरागत संदर्भ में जो कुछ अवैध माना जाता

था, उसे वर्तमान में वैधता की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया जा रहा है । इस परिवर्तन के मूल में बदलता हुआ मानवीय दृष्टिकोण है ।"[1]

"कृष्णाजी का 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में 'मित्रो' और अन्य पात्रों के माध्यम से परंपरागत नैतिक मान्यताओं के अस्वीकार की पुरजौर अभिव्यक्ति हुई है । सामाजिक परिवेश में नवीन मान्यताओं और धारणाओं को स्थान मिल रहा है । सामाजिक परिवेश को बदलाव के संदर्भ में साहित्य और साहित्यकार के सन्मुख भी नये प्रश्न है, नयी समस्याएँ है । इस संघर्ष में 'मित्रो मरजानी' उपन्यास और साहित्य भी अपनी नयी दिशा तलाश रहा है ।"[2]

आधुनिक जीवन इतना जटिल है कि व्यक्ति चाहते हुए भी स्वतंत्र नहीं हो सकता । परिस्थितियों एवं नियति से विद्रोह उसका स्वभाव बन गया है । ईश्वर के प्रति अविश्वास एवं समाजगत नैतिक मान्यताओं का बहिष्कार उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गये है । झूठी नैतिक मर्यादाओं तथा धार्मिक मान्यताओं की प्रतिक्रिया के रुप में व्यक्तिवाद उपस्थित हुआ है । देह की जरुरुतों को लेकर इस तरह बेबाक होकर बोलना संस्कृतिगत-मूल्यों में और नैतिक-मूल्यों में परिवर्तन के फलस्वरुप ही संभव हुआ । यहाँ तक कि 'मित्रो' अपनी सास को कहने से नहीं चुकती - "मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ, पर अम्मा अपने लाड़ले बेटे का भी तो आड़-तोड़ जुटाओं, निगोडे मेरे पत्थर हे बुत में भी कोई हरकत तो हो ।"[3]

'मित्रो मरजानी' उपन्यास की नायिका 'मित्रो' पशुगत प्रवृत्तियों के अंतर्गत कैद है । उसके सामने कोई नैतिक नियंत्रण नहीं है, न ही कोई आदर्श । जैसे 'मित्रो मरजानी' की सुमित्रावंती उर्फ 'मित्रो' हिंदी कथा साहित्य अनोखा नारी पात्र है । जिसे अपनी माँ के साथ कामवासना की बातचित करने में भी कोई संकोच व मर्यादा की आवश्यकता नहीं है । दोनों ही माँ-बेटी केवल काम तृप्ति के लिए ही जीवित है । मित्रो की माँ अपनी विवाहित बेटी की काम तृप्ति के लिए डिप्टी प्रेमी की व्यवस्था करती है ।

1. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रुप - निहार गीते
2. वही
3. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

"जहरीली आँखो की बालो (मित्रो की माँ) ने लाड़ बरसाया और हाथ से संभाल लड़की को बाहर ले चली - तेरासिंह तो वहाँ मांद में सोया पड़ा है , अब चलकर जरा बोर-बब्बर से भी टकरा कर ले ।"[1]

इसी प्रकार से बालो जब मित्रो के पति के सिरहाने बैठकर पहरा देने की बात करती है तब मित्रो माँ से ठिठोली करते हुए गुदगुदा कर कहती है -"ऐसा गजब न करना बिबो अपने हाथ से अपना गबरु गँवा बैठुँगी ।"[2] मानते है कि पंजाब की मिट्टी की सौंधी सुंगध इस उपन्यास में है । लेकिन बेटी व माँ के संबंधों में यह अमर्यादा निश्चित ही प्रकृतवाद का प्रभाव है । इसी प्रकार मित्रों की वासना यत्र-तत्र झलक पड़ती है । ऐसा लगता है कि जैसे जीवन में काम वासना की तृप्ति के अलावा और किसी प्रवृत्ति का महत्व ही नहीं । जैसा कि मित्रो स्वयं कहती है, -"सात नदियों तारु तवे - सी करती मेरी माँ और मैं गोरी - चिट्टी उसकी कोख पड़ी । कहते है कि इलाके के बड़भागी तहसिलदार की मुहांदरा है मित्रो ।"[3] "अब तुम ही मेरा रोग नहीं पहचानता । बहुत हुआ हप्ता - पखवारे ... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, मछली सी तड़पती हू ।"[4]

नैतिक-मूल्यों का स्पर्श व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से समस्त मानव जाति से होता है । जिसमें नीतिशास्त्र का आत्मिक संबंध है और इसी अर्थ पर "वसुधैव कुटूंबकम्" की कल्पना सार्थक होती है । नीतिशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य और ध्येय मनुष्य के सुंदर जीवन जीने के उच्चादर्श की स्थापना कर मनुष्य जीवन को अशुभ की खाई से बचाना तथा नये अभियान के लिए ऊपर उठाना तथा नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा रखना है ।

गुरुदास औऱ धनवंती दोनों को अपने परिवार में विवादास्पद स्थितियों की समस्या को लेकर बड़े दु:खी होते थे । क्योंकि पहले तो ऐसा नहीं था । लेकिन अब आये दिन झगड़े होते हैं । गुरुदास कुछ कहने की कोशिश में रहकर खँखारने लगे, जैसे गले में कुछ अटका है । बड़े ने उठ पानी का गिलास आगे किया तो घुँट भर गुरुदास संभले । पहले धनवंती की ओर देखा फिर बनवारी की ओर सिर हिला बेबसी से बोले -"न लो बड़ी उम्र का इंतहान न लो । मैं बुढ़ा ठहरा, मुझे छुट्टी दो इन झगड़ों

---

1. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रुप - निहार गीते
2. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
3. वही
4. वही

से।"[1] मंडी से कर्ज लेकर बनवारीलाल बड़े दुःखी है क्योंकि चार-छः दिन में न चुकाया तो ... । यह सुनकर - "गुरुदास खाँकते-खाँकते उठ बैठे । बुढ़े बाप ने चारपाई क्या पकड़ी, नालायकों ने सब चौपाट कर दिया ।"[2]

बनवारीलाल और उसकी पत्नी सुहागवंती है । सुहागवंती एक सभ्य तथा सर्वगुण संपन्न बहू है । जो अपने सास-ससुर की सेवा बड़े हाव-भाव से करती है । सरदारीलाल और उसकी पत्नी मित्रो के बीच आये दिन लड़ाई झगड़ा होता रहता है । क्योंकि मित्रो की अपने पति से देह की संतुष्टि नहीं होती । इसलिए वह अन्य पुरुषों से संबंध बनाती है ।

घर के सभी सदस्य मंझली बहु को उसके मायके भेजना चाहते हैं । लेकिन वह जाने को तैयार नहीं होती । बनवारी ने लंबी सांस ले सिर पर हाथ फेरा - क्या कहूँ अम्मा, तुम्हारे मन का ही भरम-भुलावा है । सच पुछो तो इस घर की कोई इज्जत आबरु अब बाकी नहीं । बारी-बारी हाथ की अंगुलियाँ चटका माँ को मर्म की बात समझाई - "दस-बीस आँखे मंझली बहू के बहाने इस घर पर लगी रहें, अम्मा, यह अच्छा नहीं है । कुछ ऐसा साधो प्यार-मनुहार से कि दो-चार महिने अपनी माँ के यहाँ लगा आए ।"[3]

सबसे छोटा बेटा गुलजारीलाल और उसकी पत्नी फूलावंती है । फूलालवंती को अपने गहनों को लेकर बहुत घमंड़ था । वह अपनी सास धवंती और जेठ़ानी सुहागवंती को हमेशा बहुत कोसती रहती है । उसे संयुक्त परिवार में कुछ जमा नहीं । वह अपने पति को लेकर अपने मायके चली जाती है ।

गुरुदास और धनवंती की एक बेटी जनको है । जनको जब अपने मायके आती है तो परिवार के लोग बहुत खुश होते है । जनको का एक पुत्र भी है । इस उपन्यास में संघर्ष एवं पात्रों की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं ।

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

4.4 मित्रो मरजानी उपन्यास में नारी चेतना -

'मित्रो मरजानी' उपन्यास का केंद्रीय पात्र है 'मित्रो' और सारे पात्र 'मित्रो' के इर्द-गिर्द घुमते है । 'मित्रो' का चरित्र सारी नारी जाति के लिए एक अलग पहचान है । यह पहचान चेतना औऱ संचेतना में परिवर्तित होती हुई हमें दिखाई देती है -

1. धनवंती -

धनवंती एक संयुक्त परिवार की नींव है, इनके तीन बेटे व बहूएँ और एक बेटी है । धनवंती का स्वभाव बहुत सहज सरल भाव का है । वह हमेशा अपने परिवार में खुशी का माहौल देखना चाहती है । सभी बहूओं और बेटों के प्रति उनका स्नेह बहुत था । क्योंकि धवनंती अपनी सास की बताई राह पर चलने का साहस करती है । जब भी वह उलटी राह चलती है, उसकी सास समझाती थी - "बेटी, इस देह से जितना जस-रस ले लो वही खट्टी कमाई है । वे दिन याद कर कर्ता से इतना ही मांगती हूँ कि जो इस कुल की बड़ी सरकार थी, जिंदा रहते उसकी सीख निभा जाऊँ ।"[1]

धनवंती भी अपनी बहुओं को उसी मार्ग पर चलने की राह बताती है । लेकिन उनकी एक बहू सुहागवंती जो हमेशा उनकी बात मानती हैं, दरअसल दो बहूएँ ऐसी है, जो अपनी मन मर्जी से काम करती हैं । उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगता था । किंतु फिर भी वह उन्हें समझाती थी । धनवंती अपने परिवार को बिखरने नहीं देना चाहती थी । धनवंती बहुत सीधी-सादी नारी है । वह हमेशा जो उन्हें सच्चा लगे, वही करती है । उनके पति गुरुदास भी कहते है -"धनवंती जैसी तुमने निभाई, कोई और क्या निभाएगा ? तेरे कर्मों में ही मेहनत है, साथिन ।"[2]

धनवंती सेवाभावी नारी है । धनवंती पारिवारिक विवादों को खत्म करने में हमेशा लगी रहती है । अपितु आये दिन किसी न किसी बात को लेकर विवाद की स्थिति सामने आ ही जाती है ।

धनवंती के मन में बड़ा अरमान है, जो घर माथा है, वही घर की इज्जत-पत रखने को न कहेगा तो दूसरा भला कौन इसे सिर-पैर उठाए फिरेगा ? धनवंती सयाने गले समझाकर बोली -

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही

"बेटा तुम्हारे बाप का जी राजी नही, इनके कहे का भरम न करना बनवारीलाल, तू भाईयों में सबसे बड़ा है, तू ही पूछ अपने भाई-भौजाई से ।"[1]

2. सुहागवंती -

सुहागवंती धनवंती की बड़ी बहू है । सुहागवंती का स्वभाव, सरलता से पूर्ण और बहुत ही सेवाभावी तथा मेहनत करनेवाली नारी है । क्योंकि वह हमेशा अपने परिवार को साथ में लेकर चलने की कोशिश करती है । सुहागवंती को धनवंती और गुरुदास भी अपनी बेटी का दर्जा देते है; क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है ।

सुहागवंती बैठी-बैठी सास के पाँव दबाने लगी तो धनवंती ने सिर हिलाया, शाबास बेटी, तेरी शाबास ! बनवारी की ओर से तो बड़ी सुरखरु हूँ । धन्य है तेरी माँ जन्म देनेवाली जिसने तुम्हें जन्म देकर इस घर के लिए ऐसा धर्म कमाया । फिर बहू का हाथ छूकर कहा -"सुहागवंती ! मंझली की तो बात एक ओर तेरी छोटी देवरानी के क्या रंग-ढंग ? मन ही मन झुरती हूँ । सारा लोक जहान छोड़ कहाँ माथा लगा बैठी ? सगे संबंधी दबे-दबे कहते थे, इस देश-दिशा का पानी अच्छा नहीं पर मैं ही घर की दाद देख भरम गई ।"[2]

सुहागवंती अपने परिवार को लड़ाई-झगड़ों को लकर बहुत सोचती थी कि अब परिवार में सभी लोक मिल-जुलकर खुशी-खुशी से रहे और सुहागवंती आये दिन विवादों से परेशान थी । वह बहुत सोचती है कि अब घर में लड़ाई-झगड़ा न हो । बहरहाल मंझली बहू मित्रो व फुलावंती कहाँ माननेवाली, किसी न किसी बाते को लेकर अड़ जाती है । सुहागवंती लाख कोशिश करती है और समझाती है । सुहागवंती सास-ससुर की बहुत सेवा करती है । उनकी हर बात मानती है । सुहागवंती ने आकर चाय का गिलास और पराठा ससुर के आगे रखा तो धनवंती ने छेड़छाड़ी की -"सुहाग बेटी, सास का लिहाज न कर, निधड़क हो अपने बापू से कहती जा कि अम्मा तेरी कितनी बड़ी जालिम है ।"[3]

सुहागवंती एक सभ्य परिवार की बेटी है । इसीलिए उसे घर के सभी कानून-कायदे मालूम

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

है और उसी कारण उसे घर-परिवार में उच्च स्थान का दर्जा मिलता है । मित्रो और फुलावंती को यह रास नहीं आता है और वह सुहागवंती से ईर्ष्या करती है । सुहागवंती का स्वभाव अपने परिवार के लिए एक-सा है, वह किसी से मतभेद नहीं करती है ।

3. सुमित्रावंती उर्फ मित्रो -

मित्रो उर्फ सुमित्रावंती का स्वभाव अन्य नारी पात्रों से सबसे अलग है । क्योंकि 'मित्रो' ऐसी नारी है, जो अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए कुछ भी कर सकती है । 'मित्रो' एक विवाहित स्त्री है और संयुक्त परिवार में रहती है । मित्रो और उसके पति सरदारीलाल के बीच आये दिन लड़ाई झगड़ा होता रहता है । क्योंकि मित्रो को अपने पति से देह की संतुष्टि नहीं होती । इसलिए वह पर-पुरुष से अपना संबंध स्थापित करती है ।

कामवासना के प्रति 'मित्रो' का यह अत्यधिक रुझान असंयमित है और उसे वाचाल बनाता है । जिसके कारण वह पारिवारिक मर्यादाओं को तोड़कर जेठ-जेठानी, सास-ससुर तक की लाज नहीं रखती, जो मुहँ में आता है, बोल देती है । उसे किसी तरह की लाज-लज्जा नहीं है । वह कहती है - "मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ, पर अम्मा लाड़ले बेटे का भी तो आड़-तोड़ जुटाओं । निगोड़े मेरे पत्थर के बुत में भी कोई हरकत हो तो ।"[1]

'मित्रो' को अपने रंग-रुप का बड़ा घमंड़ है । क्योंकि वह अपने आपको बहुत सुंदर मानती है और मेरे जैसी दूसरी कोई भी नहीं है । मित्रो जरा भी झिझक व हिचकिचाती नहीं है । पड़े-पड़े सात नदियों की तारु-तवे-सी काली मेरी माँ और मैं गोरी-चिट्टी उसकी कोख पड़ी । कहती है इलाके के बड़भागी तहसिलदार की मुंहादरा है मित्रो । " अब तुम्ही बतलाओ जेठ़ानी, तुम जैस सतबल कहाँ से पाऊँ-लाऊँ । देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानत । ... बहुत हुआ हफ्ता पखवारे ... और मेरी देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास है कि मछली-सी तड़पती हूँ ।"[2]

'मित्रो' एक सभ्य परिवार की बहू है तथापि बहू बने रहने के तौर-तरिके उसे सख्त नापसंद है । उनका स्वच्छद व्यक्तित्व उन दीवारों से कहीं ऊँचा और पारदर्शी है । जिन्हें परंपरावादी मूल्यों के

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही

ईट-गारे से खड़ा किया है । इसी से वह विवादास्पद है । क्योंकि मित्रो ऐसी नारी है, जिसमें स्नेह भी है, ममता भी है, माँ बनने की ललक भी है और एक उद्दाम वासना सरिता भी । उसे न किसी आदर्श का मोह है, न समाज तथा ईश्वर का भय । वस्तुतः वह नारी के पुराने बिंबो के खिलाफ एक नया आकर्षण है । मित्रो साहसी और निड़र नारी पात्र है, वह किसी से नहीं ड़रती है ।

4. फूलावंती -

फूलावंती भी संयुक्त परिवार की बहू है । फूलावंती सबसे छोटी बहू है और गुलजारीलाल की पत्नी है । फूलावंती का स्वभाव अन्य नारी पात्र जैसा ही है । फूलावंती को अपने गहनों और कपड़ों का बहुत घमंड़ है । उससे संयुक्त परिवार में रहा नहीं जा रहा था । वह आये दिन सास, जेठानी से लड़ाई-झगड़ा करती है और उसका ससुराल में गुजारा नहीं हो रहा था । फूलावंती ने गुलजारी के दरबार में फरियाद की -"अब अपनी आँखों देख लो, तुम्हारी माँ-भौजाई मुझे कैसे फाड़-फाड़ खाती है । मैंने आज तक बड़ा सब्र रखा है, पर कान खोल कर सुन लो, मैं अपनी सिंगारपट्टी न छोड़ूँगी ।"[1]

फूलावंती अपने जेवरों के लिए झगड़ा करती थी तो सुहाग उसे समझाती है तो फूलावंती कसकर बोली - "खुब कहीं जेठानी ! जो बैठे-बैठे दूसरों के माल हथिया ले उसके लिए तो यह व्यवहार हुआ और जो बेचारा खो बैठे उसके लिए लुटमार ।"[2]

फूलावंती अपने पति को लेकर मायके चली जाती है और वहाँ पर पति गुलजारीलाल को परेशान करती है और हर बात पर उसे दुस्साहस करती है ।

5. जनको -

जनको गुरुदास व धनवंती की बेटी है और तीन भाईयों की इकलौती बहन है । जनको का स्वभाव बहुत ही सहज-सरसतापूर्ण है । जनको की शादी हो जाती है और बहुत दिनों बाद अपने मायके आती है । भाइयों की लाड़ली बहन मायके क्या आयी कि घर-आँगन में खुशी का सूरज निकल आया ।

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही

अपनी बेटी को देखकर गुरुदास और धनवंती के चेहरे की रौनक बदल गयी है । जनको अपनी भाभियों से भी गले मिलती है । जनको को एक पुत्र भी है । जनको अपनी माँ को सास-ससूर व पति के हालचाल बताती है । जनको की सास ने भाई-भाभियों के लिए छोटी-मोटी सौगातें निकाली धनवंती बेटी पर बोलने लगी - "लो देखो नासमझी । बेटी तेरे भाई-भौजाई तेरे घर की बस्त रखेंगे । जनको ने हल्की-फुल्की आँखों से माँ की ओर देखा और बड़पन से कहा- "अम्मा, सासूजी तो बार-बार कहती रही, बहू, खाली हाथ न भेजूँगी । तेरे भतीजे-भतीजियाँ होते तो सौ लाड़ चाव करती ।"[1]

4.5 मित्रो मरजानी उपन्यास में नारी विमर्श और आधुनातन यथार्थ -

स्त्री के स्वभाव में स्थायित्व बहुत मूल्यवान गुण है । उसकी सारी शक्तियाँ कुदरतन चीजों को आकार देने में लगी रहती है । पुरुष ने शारीरिक और भावनात्मक बेड़ियों से अपनी तुलनात्मक आज़ादी का फायदा उठाया और अपने जीवन को सीमाओं को तोड़ने की दिशा में बेरोक टोक बढ़ चला । इस यात्रा में वह क्रांति और विध्वंस के खतरनाक रास्तों से होकर गुजरा है ।

वर्तमान मोड़ पर सभ्यता पुरी तरह से पौरुषीय है, ताकद की सभ्यता, जिसमें स्त्रियों को एक किनारे पर धकेल दिया गया है । इसलिए इस सभ्यता का संतुलन बिगड़ा हुआ है और एक युद्ध से दूसरे युद्ध में झोकी जा रहीं है - "स्त्री की भूमिका मिट्टी की तरह ग्रहणशील और समावेशी है, जो न सिर्फ पेड़ के बनने और बढ़ने में मदद करती है बल्कि उसकी वृद्धि की सीमाएँ भी तय करती हैं । जीवन के लिए पेड़ अपनी शाखाएँ अपरी दिशा में फैलाता है, यद्यपि उसके समस्त गहरे संबंध जमीन के भीतर मिट्टी में छिपे है । सभ्यता के भी समावेशी तत्व चौड़े, गहरे और स्थिर होने चाहिए । शील, विनय, समर्पण और आत्म-बलिदान की शक्ति अर्थात् समावेशिता के ये गुण स्त्री को पुरुष से ज्यादा अनुपात में मिले है । यह प्रकृति की समावेशिता का गुण ही है, जो जंगली तत्वों को सौम्य और कोमल बनाकर जीवन की सुंदर रचना में बदल देता है । स्त्री की समावेशिता की इसी शक्ति ने उसे वह गहरी शांति दी है, जो स्वास्थ, पोषण और संग्रहण के लिए अत्यावश्यक है ।"[2]

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. दैनिक भास्कर - रवींद्रनाथ टैगोर

वर्तमान समय नयी चुनौतियों को समझने और उनका हल खोजने तथा पुराने समस्याओं और चुनौतियों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझकर तद्नुसार उनका निराकरण करने की ओर प्रगतिशील है । क्योंकि आज के वर्तमान युग नें भी नारियों की दशा ठीक नहीं है । वह हमेशा किसी न किसी वजह से दबी की दबी रह जाती है । वह अपने इच्छा के अनुसार कार्य नहीं कर पाती है । हमेशा उस पर हुक्म किया जाता है ।

यद्यपि आज स्त्रियों की दशा को लेकर उनकी पीड़ा को यूँ तो बीच में कई बार कई लेखक-लेखिकाओं, विाचारवंतो ने अपने-अपने माध्यमों से प्रखट किया जाता रहा है, तथापि आधुनिक समय में जब समाज के प्रत्येक वर्ग से यह अपेक्षा है कि वह कंधे से कंधा मिलाकर मानव समाज की उन्नति में सहयोग दे । आधुनिक समय में स्त्रियों की दशा के प्रति चिंता, चिंतन और सार्थक क्रियान्वयन का है ।

"नारी-विमर्श ने साहित्य को समझने की केवल नयी दृष्टि ही प्रदान नहीं की अपितु उसमें नये जीवन आदर्श भी शामिल किये । सामाजिक धरातल पर उक्त सभी विमर्श में नारी-विमर्श एक ऐसा विमर्श है, जिसने पूरे विश्व में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है ।"[1]

नारी-विमर्श नारी मुक्ति या स्वातंत्र्य से संबद्ध एक विचारधारा है और नारी चूंकि समाज की धुरी के रुप में उसका संभाल सदियों से करती आ रही है । इसीलिए उसके द्वारा अथवा उसकी मुक्ति या स्वातंत्र्य का आंदोलन जब व्यावहारिक रुप देता हूँ तब समाज में क्रांति आना स्वाभाविक है । नारी-विमर्श नारी स्वातंत्र्य के प्रयासों का सैद्धांतिक वैचारिक आधार है । यह नारी जगत् के कहे-कनकहे, छुए-अनुछए पीड़ा संसार के उद्घाचन के अवसर उपलब्ध करवाता है । क्योंकि नारी विमर्श का उद्देश्य साहित्य एवं समाज नारी के दूसरे दर्जे की स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति के लिए उत्तरदायी है । नारी विमर्श का बुनियादी आधार है । नारी की पहचान को लैंगिक संबंधों से परे एक व्यक्ति की पहचान के रुप स्थापित करना । नारी के प्रति होनेवाले शोषण के विरुद्ध ऐसा संघर्ष है, जो नारी को उसकी अपनी स्थिति के बारे में सोचने, निर्णय लेने की दृष्टि और दावा प्रस्तुत करने की शक्ति प्रदान करता है ।

---

1. स्त्री मुक्ति का सपना - कमलाप्रसाद

आधुनिक बोध ने वर्तमान और उसकी आवश्यकता को अपना चिंतन क्षेत्र बनाया । अपने आप ही उसकी दृष्टि समाज के अदृश्य के रुप में उपेक्षित और शताब्दियों से शोषित नारी पर भी पड़ी । फलस्वरुप पितृसत्ताक समाज के निरंकुश अधिकार क्षेत्र में स्त्री ने भी अपनी शिकायतों, समस्याओं और इच्छाओं को दर्ज करवाने का अधिकार पाया ।

इससे यह हुआ कि आधुनिक बोध ने उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरुक करवाया । परिणामस्वरुप नारी चेतना का सार्थक विद्रोही स्वर समाज और साहित्य में गुंजने लगा । निश्चित ही इस विद्रोह के साथ पुरानी कई बातों का नकारना और नये की तलाश तथा उसके सार्थक अंश को अपनाना भी शामिल था । नये अर्थों में नारी को अपने अस्तित्व की पहचान दर्ज करवानी थी और इस प्रक्रिया में नि:संदेह बहुत कुछ पुराना, पारंपारिक और कथित रुप से शाश्वत धर्म रोयेगा भी एवं टूटेगा भी ।

नारी विमर्श के बीज भी वही पहले पहल अंकुरित हुए और हाशिये पर पड़ी या खड़ी नारी अपनी अस्तित्व बोध के साथ समाज के केंद्र में बराबरी से खड़े होने का साहस जुटाने लगी । अब नारी की जागृति नारी के समक्ष नारी के अस्तित्व का उसमें इतना आत्मविश्वास जगाने में विभिन्न विद्‌वानों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । और स्त्रियों की समस्याओं और दशा को गंभीर चिंतकपरक दृष्टि से प्रस्तुत किया है ।

फ्रांसीसी लेखिका सिमोन-द-बोउवार के अनुसार "औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि बढ़कर औरत बनती है । कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक निर्यात आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होता है । पूरी सभ्यता ही इस अजीबों-गरीब जीव का निर्माण करती है ।"[1]

आज की परिस्थिति में नारी की प्रासंगिकता को मुर्धन्य लेखिका कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास 'मित्रो मरजानी' के माध्यम से बताया है । यह ऐसी लेखिका है, जो सबसे पहले नारी के चरित्र का खुलेआम चित्रण करती है । कृष्णा सोबती ने अपने निड़र एवं साहसी व्यक्तित्व का परिचय दिया है । महिला लेखिका होते हुए भी नारी के समग्र रुप का चित्रण किया है ।

---

1. स्त्री मुक्ति का सपना - कमलाप्रसाद

रघुवीर सहाय ने कहा है - "जिसका भाव है कि इस दुनियाँ के सिर पर अंधेरे में अगर मैं एक डंड़ा मारुँ तो यह किस भाषा में चिखेंगी ? "मित्रो इस उपन्यास में संयुक्त परिवार की भीरु आत्मतुष्ट दुनियाँ के सिर पर पड़नेवाले डंड़े की चोट है ।

चरित्र की दृष्टि से 'मित्रो' हिंदी साहित्य की अभूतपूर्व पात्र है । इस गृहस्थी में पता नहीं कहाँ से टपक पड़ी है, उसने सबकुछ अस्त-व्यस्त कर दिया है । ऐसा सजीव, सदेह पात्र किसी परिवार को तोड़ देता है, पति को पागल कर देता है, हत्या हो जाती है । दरअसल 'मित्रो' को ऐसे धर्मभीरु, मध्यवर्गिय परिवार में ड़ालकर लेखिका ने बेलौस टक्कर की योजना की है । यह टक्कर बहुत तेज है, किंतु खतम नहीं होती । विरोधी परिस्थितियाँ पूरी कथा अवधि में सक्रिय रहती है । उनके दाँव-पेंच करती हुई पूरी कहानी इस टक्कर से स्पंदित है ।

'मित्रा' इसलिए भी अभूतपूर्व है कि बहुत सहज है । यह अभूतपूर्वता असामान्यतः नहीं है अपितु वास्तविकता से उपजी है । 'मित्रो' जैसे व्यक्ति समाज में थे, है और रहेंगे । उन्हें साहित्य में नहीं लाया गया था । हिंदी साहित्य में नहीं लाया गया था । 'मित्रो' कोई मनोविश्लेषणात्मक या असामान्य पात्र नहीं है ।

हिंदी में 'मित्रो' जैसी स्त्री का प्रवेश पहली बार हुआ है । कृष्णा सोबती ने ऐसे भरपुर पात्र को रखकर यह कहानी लिखी, यह बात है । इसके लिए बहुत साहस, निर्ममता और ममता की जरुरत पड़ी होगी - "यह सब बहुत-बहुत आत्मीय परिचय, पात्र से तादात्म्य के बिना संभव नहीं था ।"[1]

कृष्णा सोबती का 'मित्रो मरजानी' उपन्यास सन् 1967 में लिखा गया है उस समय की परिस्थिति को लेकर है बहरहाल यह आज के वर्तमान युग में इसकी प्रांगिकता है । क्योंकि इस उपन्यास में नारी स्थितियों, परिस्थितियों का वर्णन किया गया है ।

इस उपन्यास की प्रमुख पात्र मित्रो है । जिसके इर्द-गिर्द सारी कथा घुमती हैं । 'मित्रो' एक ऐसी नारी है, जो आज की आधुनिक युग की प्रतीक है । 'मित्रो मरजानी' में पुराने मूल्यों को जीते हुए मध्यवर्गिय परिवार में एक युवती की मुंहफट प्रतिक्रियाओं और उथल-पुथल मचा देनेवाले आचरण का

---

1. कुछ कहानियाँ : कुछ विचार में - विश्वनाथ त्रिपाठी

चित्रण किया गया है । इसमें मध्यवर्गिय पंजाबी परिवार की जीवनशैली भी विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत हुई है ।

डॉ. गोपालराय इस संबंध में लिखते है 'मित्रो मरजानी' नीरस, बासी और अरुआई हुई मध्यवर्गिय संस्कृति के विरुद्ध सब कुछ दाँव पर लगा देनेवाली स्त्री का विद्रोह है । यह स्त्री परंपरागत नारी संहिता से टकराती, जुझती और उसे ढेंगा दिखाती है ।

"कृष्णा सोबती के लेखन का अपना नया ही तेवर है । उन्होंने अपने उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में श्लील-अश्लील जैसे नैतिक-अनैतिक प्रश्न उठाये, उनके पात्र निड़र है, वे समाज की चिंता से कुंठित नहीं है ।"[1] प्रेम, सेक्स, परिवार, दांपत्य जीवन, बुढ़े व्यक्तियों की पीड़ा से होती वह राजनीति, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता व जातिवाद के वैषम्य के जहर तक को व्यक्त करती है । कथा की दृष्टि से इनमें नवीनता है और शिल्प की दृष्टि से अपनी पहचान ।

'मित्रो' केवल अपनी वासनाओं को बचाये रखने की कोशिश में है । अपने उपन्यासों, साहसिकता को भी उभारते हुए नारी चरित्रों की सृष्टि की है । 'मित्रो मरजानी' जैसा कामोदीप्त साहसिक नारी चरित्र अपनी छाप छोड़ जाता है ।

'मित्रो' की दैहिक प्यास का उपन्यासकार ने इतना बड़ा चित्रण किया है कि उन्हें साहसी तो क्या दु:साहसी कहना भी गलत नहीं होगा । मित्रो के हाव-भाव, अंग-अंग से वासना की ही गंध नहीं आती, शब्दों से फुट निकलती है । जैसे "बुरे माथोंवाले मर्द होते या तो चटकारे ले लेकर मुझे चाटते या फिर शेर की तरह मुझे चबा डालते ।

मित्रो का परिवार भरा-पूरा है और वह नारी जीवन की सार्थकता अपनी देह को लुटाने में समझती है । जीवन को भोगने में मानती है ... वह जीवन में शारीरिक आधार को ही महत्व देती है । वह कहती है -"जब तक मित्रो के पास यह इलाही ताकद है । मित्रो किसी की मार से नहीं मरती ।"[2]

कृष्णा सोबती का 'मित्रो मरजानी' मित्रो की कहानी है । वह अपने यौवन की ताकद में किसी को कुछ नहीं मानती । उसका पति उसकी देह और आत्मा की प्यास को नहीं समझता और जब उसके

---

1. स्वांतत्र्योततर महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में यथार्थ के विभिन्न रुप - नीहार गीते)
2. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

बाहर के लोगों से हंसने-बोलने के किस्से जेठ-ससुर तक पहुँचते है तो वह यह सच बिना हिचिकचाहट के कहती है - "सच तो युँ जेठानी की दीन-दुनिया बिसरा मैं मनुष्य की जात से हंस खेल लेती हूँ । झूठ युँ कि खसम का दिया राजपाठ छोड़ मैं कोठे पर तो नहीं जा बैठी ।"[1]

कृष्णा सोबती यहाँ आकर व्यक्तिवाद की गहरी आंतरिक और बाह्य स्थितियों को प्रस्तुत करती है । 'मित्रो' की सहेली के माध्यम से कहलाया है -"बात कुछ भी नहीं है बस कसबी दिल से छिल्लड़ है । यहाँ तक कि एक स्त्री पति से अतृप्त रहने के कारण अपने जीवन को विभिन्न मोड़ो की ओर ले जाती है । एक विभिन्न शिल्प के माध्य से कृष्णा सोबती नें 'मित्रो मरजानी' का चित्रण किया है ।"[3]

कृष्णा सोबती यह चित्रित करना चाहती हैं कि केवल आदर्शों के सहारे ही जिया नहीं जा सकता है । यथार्थ की भयंकरता आदमी को तोड़ देती है । वह विभ्रांत होकर कुछ भी करने लगता है । टूटे हुए आदर्श ना तो दिशा दे सकते है, ना आदर्श । कोई भी व्यक्ति अभाव और घूटन की परिस्थिति में अधिक दिन नहीं जी सकता । वह कभी ना कभी मन के अनुसार जीने का प्रयत्न करता है । इस यथार्थ में भी एक आस्था का स्वर है ।

कृष्णा सोबती ने अपने पात्रों में भावनात्मक संबंधो की अभिव्यक्ति भी की है । मनोविज्ञान युक्त आसंग प्रणाली का प्रयोग किया है । व्यक्ति की अतृप्त वासनाओं और इच्छाओं को प्रकाश में लाया है ।

इस उपन्यास में स्त्रियों के बीच आपसी मन-मुटाव एवं संघर्ष होता है और इसमें आज के आधुनिक यगु में क्या घटित हो रहा है । वैसा ही इस उपन्यास में उल्लेखित किया गया है । क्योंकि आज भी आधुनिक नारियाँ बहुत आगे तक जा चुकी है । हर स्थिति में, हर हाल में आगे है । इस उपन्यास के माध्यम से कृष्णा सोबती ने नारी-विमर्श और आधुनातन यथार्थ का चित्रण किया है ।

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही

अध्याय पंचम्

मित्रो मरजानी उपन्यास : पात्र, भाषाशैली एवं शिल्पविधान की दृष्टि से

5.1 'मित्रो मरजानी' उपन्यास : पात्रों की दृष्टि से -

'मित्रो मरजानी' उपन्यास की नायिका या प्रमुख पात्र है - 'मित्रो' । यह एक अनोखा एवं अद्‌भूत पात्र है । इस उपन्यास में कृष्णा सोबती ने पात्रों को एक संयुक्त परिवार में बांध रखा है । कृष्णा सोबती ने इस उपन्यास में पात्रों के बाह्य और अंतरंग जीवन का विश्लेषण करने का प्रयास किया है और व्यक्ति के व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों मनों के चित्रण करना चाहा हैं । यहाँ हम खास पात्र 'मित्रों' को देखना चाहेंगे ।

5.1.1. मित्रो -

'मित्रो मरजानी' उपन्यास की नायिका तथा मुख्य पात्र 'मित्रो' है । उपन्यास की संपूर्ण कथा नायिका 'मित्रो' को केंद्र में रखकर बुनी गयी है । 'मित्रो' ने नारी की पुरानी अर्थात् परंपरागत छवि को चुनौती दी है । 'मित्रो' एक बहुचर्चित एवं कोलाहल भरा नारी चरित्र के रुप में हिंदी साहित्य में प्रवेश किया है । नगरीय शिक्षित समाज में उसके प्रति एक विशिष्ट प्रकार की जिज्ञासा जागृत की गयी है ।

मित्रो को उसकी माँ के साथ बने कइयों के संबंध को अस्वाभाविक ही लगेगा । मित्रो की माँ विवाहित बेटी की काम-तृप्ति के लिए डिप्टी प्रेमी की व्यवस्था करती है । गुरुदास और धनवंती का भरा-पूरा परिवार है । तीन लड़के है । मंझले लड़के सरदारीलाल की पत्नी मित्रो है । जिसका शैशव माँ के घर के विलासी वातावरण में बिता है ।

'मित्रो' सर्मर्पिता और गृहिता दोनों है । मूल रुप से वह एक अच्छी नारी है हलांकि एक अच्छी स्त्री भी पुरुष की भाँति कामवासना का शिकार बन सकती है । यहाँ कृष्णा सोबती की 'बोल्डनेस' पर भारतीय संस्कारों एवं परंपराओं की विजय ही माननी चाहिए । कामवासना के प्रति मित्रो का यह अत्याधिक रुझान असंयमित है और उसे वाचाल बनाता है । जिसके कारण वह पारिवारिक मर्यादाओं को तोड़कर जेठ-जेठानी, सास-ससूर तक की लाज नहीं रखती है ।

मित्रो की कामवासना के बारे में जब घरवालों को पता चलता है तब वह उसे सच क्या है ? और झूठ क्या है ? को लेकर बनवारीलाल मित्रो को पूछते है तो वह अपने जेठ से कहती है मित्रो ने इनकार करती बाह से घूँघट माथे के ऊपर सरका लिया । आँख उठाकर जेठ की ओर देखा और पलटकर जेठानी की ओर आँखे मटका मिज़ाज से बोली - "सज्जनों ! यह सच भी है और झूठ भी ।"[1] यह सुनकर गुरुदास को मानो लकवा मार गया । बनवारीलाल ने आँखे झुका ली । सरदारी ने बंधी मुट्ठी छाती पर धर ली ।

मित्रो की बात सुनकर धनवंती ने सिर हिला-हिलाकर बहू को लानत भेजी - "हैया शाबाश, हैया शाबाश ! सुमित्रावंती ! दीन दुनिया की आँखो में और धूल झोंक । अरी ठगनिया, झूठ और सच तेरा एक और आशनाई आँखे दो । अरी बड़बोली, यह क्यों नहीं कहती कि माँ जन्मनेवाली ने तुझे एक थन से सच्चा दूध पिलाया और दूसरे से झूठा ?"[2] मित्रो अपने सास-ससूर, जेठ-जेठानी के सामने पर्दा नहीं रखती है । वह मुहँ खोलकर मटमैली आँखों से उनके सामने आँख मटकाती रहती है । अतएव वह किसी का लिहाज नहीं करती है ।

धनवंती का चेहरा पहले तमतमाया फिर लंबी सांस लेकर बोली - "बेटी, उठते-बैठते मालिक से यहीं माँगती हूँ कि हे सिरजनहार इसकी अच्छी-बुरी सहने को मेरे बेटे की सिदक दे और इस नक्कछिकनी के जी में भी कोई ऐसा मंत्र फूँक कि बहू बन पुरखों के कुल-कबीले की इज्जत-पत को रख ले ।"[3] मित्रो निड़र और साहसी पात्र है । मित्रो किसी के बस में आनेवाली नारी पात्र नहीं है । वह जो कुछ भी करती है अपनी मनमर्जी से ही करती है । वह अपने परिवारवालों से आये-दिन लड़ाई-झगड़ा करती है तथा वह अपने पति सरदारीलाल की तो परवाह भी नहीं करती है ।

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

5.1.2 सरदारीलाल -

सरदारीलाल भी 'मित्रो मरजानी' उपन्यास का पात्र है और 'मित्रो' उर्फ सुमित्रावंती का पति है । सरदारीलाल गुरुदास धनवंती का मंझला बेटा है । वह अपनी पत्नी 'मित्रो' के लड़ाई - झगड़े से बहुत परेशान है किंबहुना आये-दिन मित्रो उससे झगड़ती है ।

मित्रो घर में किसी की बात नहीं सुनती इसलिए सरदारीलाल बहुत परेशान रहता है । वह संयुक्त परिवार में रहता है, वह अपने बड़े भाई के साथ मंड़ी में व्यापार में मदद करता है । सरदारी अपने परिवार के सदस्यों की इज्जत व सम्मान करता है लेकिन मित्रो उसे चैन से रहने नहीं देती है । इस वजह से वह बहुत परेशान रहता है । इन दोनें के झगड़े को लेकर घर के सभी लोग परेशान होते हैं । धनवंती ने बहू की पीठ पर हाथ रखा और पुचकारकर कहा - "सुमित्रावंती, इसे जिद चढ़ी है तो तू ही आँख नीची कर ले । बेटी, मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे ?"[1]

सरदारी ने अपनी कौड़ियों सी आँखे माँ की ओर घुमाई - "अम्मा, मेरी बात पल्ले बाँध ले, यह नूरमहलन इस घर का नाम-धान सब ले डूबेगी या फिर मुझे ही काले पानी भिजवाएगी ।"[2]

5.1.3 गुरुदास -

गुरुदास सरदारीलाल के पिता और मित्रो के ससूर है । गुरुदास अपने संयुक्त परिवार में सबसे मुख्य सदस्य है । वह अपने परिवार की विवादास्पद स्थितियों को देखकर काफी परेशान है और अपने बेटे को अच्छी तपह काम करने को कहते है । क्योंकि गुरुदास बुढे हो चुके हैं । उनसे अब काम नहीं होता है । अपने परिवार में हमेशा लड़ाई-झगड़ा होते है, इसलिए वह बहुत दु:खी है । गुरुदास कहते है -"न लो, बड़ी उम्र में इस बुढ़े का इंतहान न लो । मैं बुढ़ा ठहरा, मुझे छुट्टी दो इन लड़ाई-झगड़ों से ।"[3]

गुरुदास संयुक्त परिवार की नींव है । वह अपने परिवार को अलग-थलग और बिखरने नहीं देना चाहते हैं । गुरुदास अपनी माँ से बहुत प्रेम करते हैं, उनकी माँ का देहांत होने ने बाद भी उसे अपने

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

आस-पास और अपने सपने में देखता हैं । धनवंती भी अपनी सास की कही राह पर चलती हैं । गुरुदास और धनवंती दोनों एक दिन रोये एक हुए कि दो हुए ही नहीं हैं । स्वर्गवासी माँ की याद कर वह रोये थे, वहीं माँ धनवंती को भीं याद आई है -"छन भर को तो ऐसा लगा जैसे वे दोनों भाई-बहन हों और संग-संग अपनी बिछड़ गयी माँ को याद करते हों ।"[1]

गुरुदास अपनी मंझली बहूँ 'मित्रो' से बहुत परेशान थे । क्योंकि वह लगभग हर दिन झगड़ा करती है और किसी की बात नहीं मानती है । वह सास-ससूर की इज्जत भी नहीं करती हैं । गुरुदास मित्रो की यह हरकत देखकर बहुत बिगड़ते है - "लेकिन धनवंती ने पति की बाँह थाम ली तो गुरुदास ने सिर हिला-हिलाकर कहा-यह कलजुग है, कलजुग है । आँख का पानी उतर गया तो फिर क्या घर-घराने की इज्जत और क्या लोक-मरदाज ?"[२]

5.1.4 धनवंती -

धनवंती गुरुदास की पत्नी और मित्रो की सास है । धनवंती संयुक्त परिवार की जड़ है । अपने तीन बेटे और बहूओं को वह खुश देखना चाहती है । यद्यपि अक्सर झगड़ा होता है, इसीलिए वह काफी परेशान एवं दु:खी है । इस बात को लेकर वह बेटे और बहूओं को बहुत समझाती हैं ।

धनवंती अपनी सास की बताई राह पर चलने की कोशिश करती है तो उनकी सास हर गलत काम करने से उसे रोक देती थी । धनवंती भी अपनी बहूओं को वहीं सीख देना चाहती है, परंतु वह कहाँ माननेवाली है, बड़ी बहू सुहागवंती बहुत अच्छी है, जो हर वक्त अपनी सास का ध्यान रखती है । सुहागवंती सास-ससूर दोनों की सेवा करती है । बशर्ते मंझली बहू मित्रो, छुटकी फूलावंती ये दोनों बहूएँ ऐसी है, जो उन्हें पानी तक नहीं पूछती है । धनवंती बहूओं को समझा-समझाकर थक जाती है । उन्हें सही राह पर चलने के लिए प्रेरित करती हैं । यो दोनों बहूएँ आधुनिक युग की नारी है, तो धनवंती पुराने जमाने की नारी है । उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगता है, वह उसे हर बात पर टोकती है । धनवंती बड़ी

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

बहू सुहागवंती को बहुत अच्छा रखती है । धनवंती ने आँखें पोंछ मन ही मन कहा -"सिरजनहार, तेरी ही दया है, नहीं तो मुझ जैसी कर्म-जली के भाग कहाँ जो सुहाग-सी सयानी बहू पाती ।"[१]

धनवंती सेवाभावी नारी है । वह अपने परिवार में खुशी का माहौल देखना चाहती है । वह सभी को एक साथ मिलकर रखना चाहती है । धनवंती अपने परिवार की आनेवाली हर विपत्तियों को बड़ी सहानुभूति से निपटाना चाहती है । वह हर विपत्ति या परेशानी या समस्याओं को जगह पर ही हल निकाल कर समाप्त कर देना चाहती है । धनवंती अपने परिवार में सामंजस और एकता की भावना जागृत कर खुशहाल देखना चाहती है ।

5.1.5 बनवारीलाल -

धनवंती और गुरुदास का सबसे बड़ा पुत्र है । बनवारीलाल और सुहागवंती का पति है तथा मित्रो का जेठ है । वह अपने घर की विवादास्पद स्थिति को बहुत अच्छी तह संभालता है । अपने भाईयों तथा भौजाईयों को समझाता है । बनवारीलाल मंड़ी का व्यापार करता है । उनका काम-धंदा ठीक न चलने की वजह से वह बहुत परेशान रहता है । घर की सारी जिम्मेदारी बनवारीलाल के सिर पर रहती है ।

बनवारीलाल का स्वभाव माता-पिता की तरह ही बहुत सहज एवं सरलता से भरपूर है । वह अपने मंझले भाई सरदारीलाल की पत्नी सुमित्रावंती उर्फ 'मित्रो' से बहुत परेशान रहता है । 'मित्रो' कुछ भी समझ नहीं लेती है । बनवारीलाल ने एक नज़र मित्रो भौजाई को देखा और रौबिले गले से घरवाली को कहा -"सुहाग, मंझली को ले, अंदर जा बैठ और आप सरदारीलाल के कमरे की ओर बढ़ चला ।"[२]

बनवारीलाल की माँ धनवंती के मन बड़ा अरमान लगा, जो घर का माथा है । वही घर की इज्जत-पत पखने को न कहेगा तो दूसरा भला कौन इसे सिर पर उठाए-उठाए फिरेगा ? धनवंती सयाने

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही

गले समझाकर बोली - "बेटा, तुम्हारे बाप का जी राजी नहीं, इनके कहे का भरम न करना । बनवारीलाल, तू भाईयों में सबसे बड़ा है । तू ही पूछ ले अपने भाई-भौजाई से ।"[१]

बनवारीलाल ने फिर झूठ-सच का निपटारा करने को भाई से पुछा "सरदारीलाल यह तेरी ब्याही-परणाई है, तुम ही जी पर हाथ रख कह दो कि सब झूठ है । "[२] गुरुदास भी 'मित्रो' की हरकतों से परेशान है । सरदारीलाल और मित्रो की लड़ाई और बात बिगड़ते देख, बनवारीलाल उठ बापू के पास आ झुका, दिल-दिमाग कायम रखों, बापू, यह समय हेर-फेर करने का नहीं । जिसे समझाना हो समझाओं, घर की सारी जिम्मेदारी है, क्योंकि वह घर का सबसे बड़ा बेटा है । वह इमानदार और समझदार भी है ।

बनवारीलाल को उसकी माँ कहती है घड़ी तुम्हे हाट-बाजार की मौकड़ मुश्किल हो तो भी, बेटा ना न करना । माँ के स्वर में ऐसी लाचारी भाँप बनवारीलाल मन ही मन हंसा । सुहागवंती के दिन क्या चढे है कि आये-दिन अम्मा नई से नई शह मंगवाती है । हंसकर कहा -"अम्मा सुहाग भले तुम्हारी आँख-चढ़ी बहू हो पर मैं तो इसे बिगाड़ने से रहा ।"[३]

5.1.6 सुहागवंती -

सुहागवंती बनवारीलाल की पत्नी है और धनवंती व गुरुदास की सबसे प्यारी एवं लाड़ली बहू है । सुहागवंती का स्वभाव मिलनसार तथा सेवाभावी, मेहनती है । क्योंकि वह अपने परिवार को साथ में लेकर चलने की कोशिश करती है । धनवंती व गुरुदास सुहागवंती को अपनी बेटी की तरह रखते हैं ।

सुहागवंती एक सभ्य परिवार की बेटी है । इसीलिए उसे सभी कायदे -कानून मालूम है । वह संयुक्त परिवार की सारी बोतों को अच्छी तरह जानती है । इसी वजह से वह अपने परिवार के लड़ाई-झगडे को शांति से मिटाने की बात करती है । सुहागवंती अपनी दोनों देवरानियों को बहुत समझाती है और उन्हें अच्छा रहने के लिए भी सचेत करती है हालांकि वो कहाँ उनकी बात मानती है ? सुहागवंती ने

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
2. वही
3. वही

मंझली के कान में कहा - "बहन मेरी, इस घड़ीसुलह-सफाई होने दे । कल की रही कल के साथ, इन बड़े सयानों को और जला-कलपा ।"[१]

सुहागवंती अपने घर में आये दिन लड़ाई-झगड़ो को हमेशा के लिए खत्म करना चाहती है, बशर्ते किसी-न-किसी बात को लेकर विवाद हो ही जाता है । सुहागवंती एक मेहनती, साहसी और सेवाभावी नारी है ।

5.1.7 गुलजारीलाल -

गुलजारीलाल धनवंती व गुरुदास का सबसे छोटा बेटा और फूलावंती का पति है । गुलजारीलाल अपने बड़े भाई बनवारीलाल के साथ मंड़ी मे व्यापार करता है । फूलावंती गुलजारीलाल को हमेशा परेशान करती रहती है । वह उसे अपने मायके चलने के लिए विवश करती है । गुलजारीलाल अपने परिवार के साथ रहना चाहता है । लड़के की बेबसी को देखकर धनवंती को एकाएक ऐसा जान पड़ा कि वह माँ न होकर कोई जल्लाद है । जो हाथ में युद्ध की तेग लिये रह-रहकर बेटे को ललकारती है । अपने सबसे लाड़ले बेटे के लिए दु:ख दर्द से जी भर आया । भरा कंठ पुचकाकर कहा - "गुल बेटा, इस बूढ़ी की सोच न कर । जिससे तेरी घरवाली को ठंड़ पडे, तू वही कर ।"[२]

गुलजारीलाल की पत्नी फूलावंती संयुक्त परिवार में नहीं रहना चाहती है । वह हर वक्त सास-जेठानी को कोसती रहती है । फूलावंती अलग रहने का फैसला करती है । गुलजारीलाल को अपने मायके ले जाती है । वह उसे बहुत ताने मारती है । वह हर वक्त उन्हें निचा दिखाने की कोशिश करती है ।

गुरजारीलाल सीधा-सरल एवं सहनशील पात्र है । फूलावंती गुलजारीलाल को लेकर अपने मायके चली जाती है ।

---

1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती
1. मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

5.1.8 फूलावंती -

फूलावंती धनवंती व गुरुदास की सबसे छोटे लाड़ले गुलजारीलाल की पत्नी है । फूलावंती का चरित्र भी अन्य नारी पात्र जैसा ही है । उन्हें अपने गहनों पर जबर्दस्त घमंड़ है । इसीलिए वह अपने परिवारवालों के साथ अक्सर झगडा करती रहती है । फुलावंती संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं करती है । वह परिवार के सभी सदस्यों से झगड़ा करती है । वह अपने जेवरों को लेकर झगड़ा करती है । सुहागवंती जो फूलावंती की जेठानी है, समझाती है तो फूलावंती उन्हें कसकर बोलती है - "खुब कही, जेठानी ! जो बैठे-बैठे माल हथिया ले उसके लिए तो रह हुआ व्यवहार और जो बेचारा खो बैठे उसके लिए लुटमार ।"[१]

फूलावंती एकदम बिंदास और मनमर्जी से रहना चाहती है -"वैसे वह ससूलाल में रह नहीं सकती है । इसीलिए वह संयुक्त परिवार में रहना नहीं चाहती है । फूलावंती को अपने कपड़े और गहनों को लेकर बहुत बड़प्पन है । उन्हें साज-सिंगार करना बहुत अच्छा लगता है, पसंद करती है और करती रहती है । इस बात को लेकर जेठानी सुहागवंती और सास धनवंती को हर समय कुछ-न-कुछ बोलती रहती है । फूलावंती अपने-आपके बहुत बड़े घर की एवं धन-दौलतवाली मानती है ।

फूलावंती उनके पति गुलजारीलाल को बहला-फूसलाकर, बेबसकर अपने मायके ले जाती है और ससुराल वालों की बुराई करती है ।

5.1.9 जनको -

जनको धनवंती और गुरुदास की इकलौटी बेटी और तीन भाईयों की लाड़ली बहना है । जनको को घर के सभी सदस्य बहुत ही लाड़-प्रेम से रखते है ।

जब तक जनको अपने माँ-बाप भाईयों के साथ रहती है तब तक घर में विशेष रौनक थी । कुछ दिन बाद जनको का विवाह हो जाता है और बहुत दिनों बाद मायके आती है । उसे देखकर माँ धनवंती, बाप गुरुदास बहुत खुश होते हैं । जनको घर में सबसे छोटी है और उनका एक बच्चा भी है । जनको के बच्चे को देखकर गुरुदास और धनवंती के चेहरे की रौनक और भी चमक उठती है । वह दोनों नाती को बहुत प्यार-प्रेम करते है ।

---

[1] मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

जनको अपने भाईयों से गले मिलती है और भाई भी बहुत खुश होते हैं । जनको को देखकर बनवारीलाल कहता है कि क्यों भूल ही गई थी, देख तू कितनी बदल गई है । धनवंती कहती है, जय अपने भांजे को भी देख ले बेटा बनवरीलाल दोनों का बहुत लाड़ करता है ।

जनको की सास जनको के मायके परिवार के सभी सदस्यों के लिए कुछ-न-कुछ सामान भेट रुप में पहुँचाती है । जनको अपनी भाभियों को सामान देती है । जनको मिलनसार और सहनशील नारी पात्र है ।

उपन्यासकार ने अपने पात्रों में भावनात्मक संबंधों की अभिव्यक्ति की है । मनोविज्ञान युक्त-आसंग प्रणाली का भी प्रयोग किया गया है । व्यक्ति की अतृप्त वासनाओं और इच्छाओं को प्रकाश में लाया गया है । इसके सहारे मनोविश्लेषणीय रोगी के अनाप-सनाप शब्दों का भी अनुकूल वातावरण में उपचार प्रस्तुत किया है ।

पंजाबी पृष्ठभूमि से सराबोर संयुक्त परिवार खुशियों के रौनकपूर्ण वातावरण में छलकता और आल्हाददायी है । सुखद परिवार की सुगंध भी फुट रही है । इसमें घरेलु समस्याएँ भी प्रस्तुत है ।

उपन्यास के आदि से अंत तक एक प्रसन्न पारिवारिक जीवन की महक उपलब्ध होती है । जो बहुत सारे उपन्यास में दुर्लभ-सी होती जा रही है ।

कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' उपन्यास के पात्र अपने-आप में एक विवादास्पद स्थितियों में ही जीते-जागते हैं और यही इस उपन्यास का सार है ।

5.2 'मित्रो मरजानी' उपन्यास : भाषाशैली की दृष्टि से -

पंजाबी सभ्यता एवं संस्कृति की पृष्ठभूमि मे पली-बढ़ी कृष्णा सोबती हिंदी साहित्य की अनमोल एवं अनोखी, मानवीय संवेदनाओं की पुरोधा श्रेष्ठ लेखिका है । आपके साहित्य में पंजाबी, उर्दु भाषा के शब्दों की भरमार है । क्योंकि आपकी भाषा मिश्रित है ।

कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास "मित्रो मरजानी" में अपने पात्रों को अपनी-अपनी सीमाओं में रखा है । आपने अपने तरीके से भाषाशैली का प्रयोग किया है । आपकी भाषाशैली इतनी आसान नहीं है, बहुत कठिन है, क्योंकि आपका कम लिखना ही दरअसल "विशिष्ट" लिखना है ।

उपन्यास की भाषाशैली की महत्ता भाषा के सरल, सजीव, पात्रानुकूल, रोचक, मर्मस्पर्शी, प्रभावपूर्ण और प्रवाहमयी बने रहने में होती है । लेखकीय भाषा एवं उसकी शैली के संदर्भ में डॉ. शुक्ल का चिंतन है कि- "भाषा शिल्प जो संचार का विशिष्ट माध्यम है । आधुनिक लेखक और कवि भाषा का स्वरुप भी साहित्यिक न रहकर यथार्थवादी होता गया है ।" इसी तरह कृष्णा सोबतीजी की भाषा शैली बदलती है ।

कृष्णा सोबती ने प्रेम के उस स्वरुप को उजागर किया है, जो सेक्स तक सीमित नहीं है । उसे इतना विस्तार दिया गया है कि यह उपन्यास पर हावी होने की गवाही देता है । अन्य सबकुछ दबकर रह जाता है । वह एक समकालीन महिला कथाकार है, जो सेक्स का चित्रण बिना संकोच के करती है । यह इनके आधुनिक बोध का परिणाम है । आधुनिक होने का प्रमाण खुले चित्र नहीं है । कृष्णा सोबती ने अपनी काव्यमय भाषा सौंदर्य से इसे चुस्त-सुगठित बनाया है ।

कृष्णा सोबती ने कथावस्तु में सुलझे हुए स्थापत्य का निर्वाह किया है और प्रसंगानुसार प्रत्यग्दर्शन शैली (फ्लैश बैक) का बढ़िया उपयोग किया है । संपूर्ण उपन्यास ने संयोग शृंगार के स्थूल प्रसंगों को भी सुक्ष्म शालीन ढ़ंग से चित्रित करने में सफलता पाई हैं ।

कृष्णा सोबती के सामने 'परंपरा' एक चुनौती-सी है । जिसे आप तमाम बुनियादी नैतिक मान्यताओं के पश्चात् भी तोड़ देती हैं । मूर्तिभंजन की स्थिति में आकर, सोबतीजी नारी के मन की कमजोरियों का चित्रण अपने अप्रतिम शिल्प से प्रस्तुत करती है ।

भाषाशैली के संदर्भ में कृष्णा सोबती अन्य लेखकों जैसे मुंशी प्रेमचंद, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी आदि से भिन्न हैं । आज के उपन्यासकारों में चार शैलियाँ प्रचलित हैं, जो इस प्रकार हैं - कथाशैली (प्रेमचंद का 'रंगभूमि'), आत्मकथात्मक शैली (इलाचंद्र जोशी का 'घृणामयी'), पत्रशैली (उग्र का 'चंद हसीनों का खतूत') और डायरी शैली (शोणित तर्पण) । इसी प्रकार की शैलियों से कृष्णा सोबती की भाषाशैली अन्य लेखकों से भिन्न है ।

सोबती की भाषा शैली अन्य लेखकों से भिन्न हैं ।

५.३ 'मित्रो मरजानी' उपन्यास शिल्प विधान की दृष्टि से -

'मित्रो मरजानी' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने पंजाब के मध्यवर्गीय परिवार को अंकित किया है । जिसमें वहाँ की रीति-रिवाज, नीति, रहन-सहन आदि का चित्रण किया है ।

कृष्णा सोबतीजी ने अपने साहित्य में नारी के चरित्र का खुलेआम चित्रण किया है । आपने साहस और सशक्तता के साथ हिम्मत बनाई है । क्योंकि आप पहली लेखिका है, सेक्स का खुलेआम चित्रण किया है ।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास की ऐसी नारी पात्र है, जो अपनी वासना को तृप्त करने के लिए कुछ भी करने को तैयार है । प्रस्तुत उपन्यास में मुख्य पात्र 'मित्रो' है और बाकी सारे 'मित्रो' के इर्द-गिर्द घुमते है ।

'मित्रो मरजानी' का संयुक्त परिवार है । 'मित्रो' के ससुराल का महौल अलग है, क्योंकि वहाँ उसे थोड़ा बंधन में रहना पड़ता है । वह अपने मायके में बंधन मुक्त रहती थी । इसीलिए उसे संयुक्त परिवार की बहू बनने की लालसा ना के बराबर है । 'मित्रो' की सारी हरकतों का पता अपने ससुरालवालों को पता चलता है तो घर में आये दिन लड़ाई-झगड़ा होता है । क्योंकि 'मित्रो' इन सारे बंधनों से मुक्त और बिंदास रहना चाहती है ।

यौन वर्जनाओं, यौन विकृतियों, यौन कुंठाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी विभिन्न पात्रों के प्रतीकात्मक विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत हुआ है । 'मित्रो' की काम, कुंठा, दमित यौन भावना का परिणाम है । 'मित्रो मरजानी' की कथासार कृष्णा सोबती भी अपने पात्रों की बहुज्ञता को दर्शाती हुई उन्हें समन्वित शिल्प विधि के परिवेश में घुमाती है और बदलते परिप्रेक्ष्य में उन्हें चित्रित करती है ।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने अंतर्प्रयोग प्रवृत्ति को चित्रित करने के शिल्प की आवश्यकता अनुभव की है । आप अपने उपन्यास में रुपगत (शिल्प विषयक) नवाकर्षण ले आयी है । आपने नैतिकता को भी नये आयाम में अभिव्यक्त किया है । यह नवीनता उपन्यास के कथ्य को नवीन शिल्प के विभिन्न तत्वों व नवीन संयोजन में रुपायित करती है । मुंशी प्रेमचंद की सुधारवादी दृष्टि, प्रेमचंद स्कूल के कथाकारों की आदर्शवादी विचारधारा की इतिवृत्तात्मकता एवं वर्णनात्मकता की

एकरसता तोड़ दी गई है । नवीन परंपरा की उपन्यासकार कृष्णा सोबतीजी ने अपने उपन्यास में विश्लेषणात्मक शिल्प-विधी का, उपन्यास में अपनी सुक्ष्म अंतर्दृष्टि का परिचय देते हुए, चेतन से अवचेतन की दिशा में, अंतर्प्रयोग कर रहे व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व के अतिरिक्त सहानुभूति के साथ चित्रित किया है ।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास में उपन्यासकार कृष्णाजी ने संयुक्त परिवार को लिया है । यह उपन्यास नवीनता की शिल्प दृष्टि से श्रेष्ठ है । क्योंकि कृष्णाजी ने इसे आज के आधुनिक युग की क्या परिस्थिति और स्थिति है, वही स्थिति इस उपन्यास में दर्शायी है । क्योंकि आज और स्थिति है, वही स्थिति इस उपन्यास में दर्शायी है । क्योंकि आज अत्याधुनिक युग में संयुक्त परिवार की संख्या कम होती जा रही है । इसकी वजह ये है कि आज के आधुनिक युग में हर व्यक्ति बिंदास और सारे बंधनों से मुक्त रहना चाहता है । इसीलिए परिवार में वाद-विवाद, लड़ाई-झगड़ा होता है । वहीं इस उपन्यास में कुष्णाजी बताना चाहती है कि 'मित्रो' और 'फूलावंती' ये दोनों ऐसे नारी पात्र है, जो संयुक्त परिवार की बहू नहीं बनना चाहती हैं । बशर्ते उन्हें मजबूरी में रहना पड़ता हैं । वह एकल परिवार में रहना पसंत करती है । क्योंकि 'मित्रो' अपने पति सरदारीलाल से देह की संतुष्टि न होने से पर पुरुष ध्यानाकर्षित करती है । फूलावंती जेठानी, सास से लड़ाई करती है । वह अपने पति को लेकर मायके चली जाती है । गुरुदास की बड़ी बहू सुहागवंती सुशील, स्वाभीमानी नारी है ।

इन पारिवारिक विवादों को लेकर गुरुदास व धनवंती बहुत चिंतित होते हैं और वह अपने परिवार को बिखरने नहीं देना चाहते हैं । परिवार में बेटें और बहूओं की तनावपूर्ण स्थिति देखकर उन्हें बहुत दु:ख होता है । वह बेटें और बहूओं को समझाते भी हैं । अतएव वह कहाँ माननेवाली थीं । यहाँ उपन्यासकार की शिल्प की कलात्मकता आज के अत्याधुनिक जमाने में क्या हो रहा है, वहीं चित्रित करती है ।

उपन्यासकार कृष्णा सोबतीजी ने 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में 'मित्रो' को प्रतीकात्मक दृष्टि माना है । बाकी सभी पात्र - गुरुदास, धनवंती, बनवारीलाल, सुहागवंती, सरदारीलाल, गुलजारीलाल, फूलावंती, जनको इन सभी पात्रों का वर्णनात्मक शिल्प तथा समन्वित शिल्प की दृष्टि से उल्लेखित किया है ।

'मित्रो मरजानी' कृष्णा सोबतीजी का उपन्यास शिल्प-विधान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ एवं सफल उपन्यास है ।

5.4 मित्रो मरजानी उपन्यास : नये आयाम की दृष्टि से -

कृष्णा सोबती ने लेखन के परिवर्तित रुपों में ही लेखन के नये आयाम प्रस्तुत करने में सहयोग प्राप्त किया है । द्‌वितीय युद्‌ध के पश्चात्‌ जो नया मध्य वर्ग स्थापित हुआ, उसे लेखिका ने नहीं नकारा है । कृष्णा सोबती का 'मित्रो मरजानी' यह एक सफलतम्‌ उपन्यास है । क्योंकि इसके नये परिवेश को नये ढ़ंग से प्रस्तृत किया गया है । मनोविज्ञान, राजनीति, भ्रष्टाचार, पाश्चात्य दर्शनों के अतिरिक्त कृष्णाजी ने मध्य वर्ग और उसकी नारी का मनोवैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत किया है । शिक्षित होने के कारण नारी जीवन, दर्शन, तर्क और भौतिकता के बीच झुकने लगा है । मध्यमवर्गीय स्त्रियाँ अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरुक होने लही है । उनमें स्वतंत्र वैचारिक शक्ति दृष्टिगत होती हैं ।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास में कृष्णा सोबती का पात्र 'मित्रो' एक ऐसा नारी पात्र है, जो अपनी कामवासना के लिए सबकुछ करने के लिए तैयार हो जाती है । उपन्यासकार इस उपन्यास के माध्यम में नारी की मानसिक तथा शारीरिक दोनों स्थितियों का इन्होंने वर्णन किया है ।

कृष्णा सोबती 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में नया परिवेश, नया शिल्प और पात्रों की विशेषता को भी उसी आधार पर प्रदर्शित करती है ।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास में अत्याधुनिक युग के परिवार में भी वहीं स्थिति रहती है, वह आज के अत्याधुनिक युग के परिवार में भी वहीं स्थिति है । क्योंकि आज के आत्याधुनिक युग में नारी भी पुरुष के पीछे नहीं है । वह पुरुष के कंधे से कंधे मिलाकर चल रही हैं । उसी आधार पर 'मित्रो' भी अपने परिवार में किसी की नहीं सुनती, समाज की न पति की । वह तो अपनी कामवासना को ही तृप्त करने में मगन रहती है ।

आधुनिक शिक्षा के फलस्वरुप आधुनिक नारी में रुढ़ियों तथा अंधविश्वासों के प्रति विश्वास कम हो गया । यद्‌यपि कुछ नारियाँ अभी भी रुढ़ियों, शंका-कुशंका और अंधिवश्वास त्की शिकार हैं । मध्यवर्गिय नारी का जीवन दर्शन कहीं व्यक्तिवादी तो कहीं आदर्शवादी बना हुआ है । अहम्‌ के प्राबल्य

के कारण ये स्त्री-पुरुष अपने व्यक्तित्व के प्रति जागरुक रहकर अपना मार्ग स्वयं तय करते हैं । इसलिए कर्मवाद और भाग्यवाद की टकराहट प्रारंभ हो जाती हैं । नारी जीवन के इन विड़बनाओं को नये आयाम के साथ कृष्णाजी ने व्यक्त किया है ।

नारी सही अर्थों में ममता, त्याग, सतीत्व, धैर्य, शौर्य, तेज एवं विशुद्ध जीवन की प्रतीक है परंतु आधुनिक जीवन की जटिलताओं और विषमताओं के बीच एक व्यक्ति के रुप में उसकी अपनी अनेक समस्याएँ, कुठांएँ, दुःख, पीड़ा है । जिसका एक मानवीय धरातल है । यहीं कृष्णाजी ने अपने 'मित्रो मरजानी' उपन्यास में अंकित किया है ।

कृष्णा सोबती टूटते जीवन मूल्यों, बिखरती नैतिकताओं के धुएँ के बीच वे आत्मनिर्भरता एवं आत्मसम्मान के अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहती हैं । उनकी आंतरिक ममता, करुणा जीवन को मंगलमय बनाने का प्रयास करती है । नारी की मानसिकता, संवेदना, घूटन और वेदना को कृष्णाजी ने जिस गहन अनुभूति से कलात्मक अभिव्यंजना प्रदान की उससे नारी के प्रति समाज का देखने के दृष्टि में भी अंतर आने लगा है । उसे भली-भाँति अपने में अंकित किया है ।

"आधुनिक नारी शिक्षित होने के कारण अपनी समस्याओं को व्यक्तिगत ही समझकर उन्हें सुलझाने के लिए जीवन संघर्ष में उलझ गयी है । विवाह के बाद वह न केवल दासी बनकर रहना चाहती है, न भोग्या । इन परंपरागत रुपों के विपरित वह पति को समान अधिकार प्राप्त करना चाहती है । क्योंकि नारी केवल शरीर नहीं न केवल स्थूलकाया गठरी है । उसकी आत्मा में रहने के लिए भी कुछ चाहिए ।"[१]

उपन्यास में आज का व्यक्ति सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ अपना परिवर्तन भी चाहता है । उसकी दृष्टि में पारंपरिक रुढ़ियाँ, रीति-रिवाज़, मान्यताएँ आदि सभी निर्थक हैं । वह परंपरागत मूल्यों को नकारता है और प्रत्यक्ष जीवन को स्वीकारता है । तेजी से बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति की आत्मरक्षा ही उसका मूल मंत्र हो गया है और वहीं उसकी नियत बन गयी है । इसीलिए आज वह भोगे हुए यथार्थ सीमित परिधि आदि का शिकार बन गया है । भारतीय जीवन के इस नये परिवेश ने उसके व्यक्तित्व को विघटित और चरित्र को स्खलित कर दिया है ।

---

[1] रामेश्वर शुकल 'अंचल'-उल्का

कृष्णा सोबती ने खुद महिला होते हुए भी महिलाओं की दैहिक यातनाओं का वर्णन किया है । इन्होने सेक्स का खुला चित्रण बिंदास किया है ।

उपसंहार

उपन्यास गद्य साहित्य की श्रेष्ठ विधा है । उपन्यास युग की नयी अभिव्यक्ति का नया रुप है । साहित्य के रुपों में उद्‌भव के संबंध में यह एक अखंड सत्य है कि वह व्यक्ति और युग के शाश्वत और रसायन का परिणाम होते हैं । सामयिकता का यथार्थ चित्रण अनेक महिला लेखिकाओं ने किया है । कृष्णा सोबती का नाम शीर्ष में आता है ।

उपन्यास में आंतरिक ऊष्मा भरपूर है । किंतु बाह्य तप का अभाव है । व्यक्तित्व कितना ही परिपक्व उदार क्यों न हो, इतने बड़े हादसे के बिना उद्‌वेलित हुए गुजर जाना विलक्षण और अविश्वसनीय लगता है । प्रेम की प्रकिया में, अनुभवों में त्रास, पीड़ा, घृणा, कष्ट, ईर्ष्या, द्‌वेष, हिंसा, प्रतिकार आदि भावनाओं की भी अपनी अहमियत हैं ।

सुमित्रावंती उर्फ 'मित्रा मरजानी' उपन्यास में एक ऐसी नारी पात्र है, जो अपनी कामवासना के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाती है । कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास का कथ्य विषय बहुत ही अलग अलग हैं । वे सफलतापूर्वक अपने उपन्यास में उठाई गई समस्या का अंकन करती है ।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास अत्यधिक विवादों की वजह से बहुचर्चित रहा है, परंतु कई बिंदुओं से उस में नयापन आया है ।

कृष्णा सोबती को लेखन का 'बोल्ड' माना है । 'मित्रो मरजानी' में सेक्स के खुले चित्रण से उनके विरुद्‌ध आरोप लगे कि उन्होंने बोल्ड़ या दुस्साहसपूर्ण लेखन करके मात्र ध्यानार्कर्षित किया और सबसे बड़ी स्त्री की भाव-भावनाओं को व्यक्त होने का संवेदनाओं के साथ जीवन जीने का हक या अधिकार है । उसी को लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किया है ।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी के चरित्र का ही वर्णन है । आपने नारी जीवन की सच्चाइयों का ही वर्णन किया है । उसे आपने सशक्त एवं प्रभावशाली रुप में अंकित किया हैं । कृष्णाजी ने अपने उपन्यासों में नारी के विविध पहलुओं तथा नारी जीवन की वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं के सुक्ष्म रुप में चित्रित किया गया है । नारी सृष्टि के आकर्षण

का मूल आधार है, नारी का अस्सिम प्रेम, अथक-परिश्रम, वात्सल्य, सेवाभाव और सहनशीलता द्वारा ही वह बीज पल्लवित-पुष्पित होता हैं । कितने आश्चर्य की बात है कि, जो नारी संपूर्ण मानव जाति के मूल उत्स का साधन है । सामाजिक मूल्यों के ह्रास में जहाँ व्यक्ति की अहम्वादिता सक्रिय भूमिका का निर्वाह करती है, वही दूसरी ओर मानव मन में व्याप्त कुंठा, घूटन और संयम भी कम प्रभाव नहीं ड़ालते हैं ।

आज का जीवन नवीन भौतिक सभ्यता की ओर अग्रेसर हो रहा हैं । नित नये परिवर्तन करता जा रहा है । सामाजिक और परिवारिक संतुलन में तनाव की स्थिति बढ़ी हुई है । इसकी परणीति भौतिक युग की भाग-दौड़ में द्रुत गति से चलनेवाले जीवन में दिखाई देती है ।

कृष्णा सोबती ने एक ओर नारी जीवन में उत्पीड़न, संवेदना का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है तो दूसरी ओर सामाजिक, और नैतिक-मूल्यों में आई गिरावट भी अपनी लेखनी से रेखांकित किया है ।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में पारिवारिक पंजाबी, पृष्ठभूमि से छलकता आल्हाद और खुशियाँ रौनकपूर्ण हैं, घरेलू समस्याएँ भी वहाँ प्रस्तुत है । सुखद परिवार की सुगंध भी फूट रही है । उपन्यास में आद्यांत एक प्रसन्न पारिवारिक जीवन की महक उपलब्ध होती है, जो इधर के उपन्यासों में दुर्लभ होती जा रही है ।

हिंदी साहित्य की वरिष्ठ लेखिका कृष्णा सोबती की चर्चा किए बगैर स्त्री मुक्ति के रचनात्मक साहित्यिक संघर्ष को समझा नहीं जा सकता है । ऊर्जा, तेजस्विता, और साहस के कारण अपने समकालीनों में उनकी विशिष्ट पहचान बनी है । 'मित्रो मरजानी', 'डार के बिछूड़ी', 'सूरजमुखी अंधेरे के' और 'दिलो-दानिश' में आप ने परिचित परिवेश में ही स्त्रियों के अनछुए पहलुओं को प्रभावी ढ़ंग से प्रस्तुत किया है । मित्रो, अम्मु और महकबानो के रुप में औरतें पूरे सामर्थ्य के अपनी उपस्थिति दर्ज करती हैं । ये जिस परिवेश की उपज होती है, वहाँ के समाज से संवाद कायम करती है । संवाद के प्रश्नों की लड़ी लगा देती हैं । लेकिन बहुचर्चित रचना 'मित्रो मरजानी' और ' ऐ लड़की' की पठनीयता अधिक रही है । 'ऐ लड़की' तो कई महीनों तक 'हंस' में परिचर्चा के केंद्र में था । दरअसल कृष्णो सोबती न पुरुष का विरोध करती है, न परिवार का और न विवाह संस्था का, वे तो इन सबके मध्य ही

स्त्री की 'निज़ता' को प्रतिष्ठित करना चाहती हैं । आपने अपनी रचनाओं में 'निज़ता' को चिह्नित भी किया है ।

रचनाकार रचना का आत्मसंघर्ष, द्‌वंद्‌व या आत्ममंथन भी होता है । वह अपनी स्मृतियों, वर्तमान का संघर्ष और भविष्य की संकल्पना रचनाओं में निरुपित करता है । रचना का निर्वैयाक्तिक होना दुष्कर-सा है । कृष्णाजी के उपन्यास निश्चित रुप से आपके व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करते हैं । उम्र के हर मोड़ पर आपने नये जीवन प्रश्नों और उलझनों को सुलझाने के रुप से सतत प्रवाहमान है ।

कृष्णा सोबती सामाजिक-मूल्यों और नारी को मानवीय संवेदनाओं के साथ जीवन जीने को सशक्त अभिव्यक्ति देनेवाली लेखिका है । जिसमें सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ उनकी समस्याओं को अत्यंत सुक्ष्मता से उकेरा है । संप्रति सामाजिक जीवन में अनेक समस्याएँ और उनका अंतर्विरोध, विसंगतियाँ, व्यक्तिगत अहं आदि परंपरागत सामाजिक मूल्यों में नित-नवीन परिवर्तित मूल्यों की स्थापना करते जा रहे है । इसी कारण आज परिवार की परिभाषा बदल गई हैं । वे संयुक्त की बजाय एकल होते जा रहे हैं । एकल परिवार में भी समस्याएँ जन्म ले रही है । इन समस्याओं को कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यासों में रेखांकित किया है । जैसे-पारिवारिक विघटन, परंपरागत मूल्यों का ह्रास, पारिवारिक जीवन के अंतर्विरोध, आपसी संबंधों में टकराव, रिश्तों में दरार, दांपत्य जीवन की कृत्रिम जीवनशैली, गिरते हुए जीवन-मूल्य, वैयक्तिक कुंठा, सामाजिक-संत्रास आदि न जाने कितने सुक्ष्म पहलु भरे पड़े हैं ।

आधा-अधूरा पुरुष जीवन का संपूर्ण जीवनानंद लेता है और कुदरत की अद्‌भूत एवं मूल आधार संपूर्ण होकर भी जीवन का आनंद नहीं ले सकती, सिर्फ सामाजिक रीति-रिवाज, बंधन रुपी जकड़नों में जकड़कर कुंठा, घूटन, परंपरागत सामाजिक-मूल्यों की जंजिरों में बँधी होने की वजह से और उत्तर आधुनिक युग में स्त्री इन सारी बातों तो कर अपनी जिम्मेदारियों तथा दायित्वों को निभाकर मुक्त जीवन जीना चाहती है तो कोई गैर नही है ।

कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी' के माध्यम से इसी बात को तेज-तर्रार और स्त्री के मर्यादा की सीमा में रहकर ही स्त्री की मन भावाभिव्याक्त को 'मित्रो' के जरिये उजागर किया है ।

पुरुष करें वह सब ठीक और स्त्री करे वह सब गलत, यह कैसा न्याय है ? यही प्रश्न कृष्णाजी ने मानव समाज के सामने बिना हिचकिचाहट में उपस्थित किया है ।

कृष्णा सोबती की रचनाएँ या आधार ग्रंथ -

- **उपन्यास -**

1. डार के बिछुडी - 1569
2. मित्रो मरजानी - 1967
3. यारो के यार - 1968
4. तीन पहाड़ - 1968
5. सूरजमुखी अंधेरे के - 1972
6. ज़िंदगीनामा - 1979
7. ऐ लड़की - 1991
8. दिलो दानिश - 1993
9. समय सरगम - 2000

- **कहानी संग्रह -**

1. बादलों के घेरे में - 1980

- **कविता -**

1. प्यासे खास
2. गहबाँहियों सी उमड़ती - सोबती एक सोहबत में प्रकाशित हुई है ।

- **संस्मरण -**

1. हम हशमत भाग-एक - 1979
2. हम हशमत भाग-दो - 1999

- **अन्य साहित्य -**

1. सोबती एक सोहबत (संकलित रचना) - 1989
2. जैनी मेहरबान (पटकथा) - 2005
3. शब्दों के आलोक में - 2005
4. सोबती - वैद संवाद - 2007

संदर्भ ग्रंथ -

1. कृष्णा सोबती के उपन्यासों मे प्रतिबिंबित नारी जीवन - डॉ. सलोचना अंतरेड्डी
2. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास - डॉ. गीता सोलंकी
3. एक नजर कृष्णा सोबती पर - डॉ. रोहिणी
4. कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य - डॉ. ब्रिजिट पॉल
5. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरुप - डॉ. अनिता
6. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री का शिल्प विधान - रमा शर्मा
7. स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रुप - नीहार गिते
8. हिंदी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना - डॉ. सुरेश सिन्हा
9. स्त्री मुक्ति का सपना - संपा. कमलप्रसाद
10. स्त्री संघर्ष का इतिहास - राधाकुमार
11. स्त्री-पुरुष कुछ पुनर्विचार - राजकिशोर
12. हिंदी उपन्यासों नें नारी - डॉ. शैल रस्तोगी
13. उपन्यास शिल्प - डॉ. गोपालराय
14. आधुनिक हिंदी साहित्य - आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
15. नये साहित्य का सौंदर्यबोध - मुक्तिबोध
16. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण - डॉ. रमेशकुंतल मेघ
17. हिंदी गद्य साहित्य - डॉ. रामचंद्र त्रिपाठी
18. हिंदी उपन्यास उपलब्धियाँ - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
19. हिंदी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता - नवलकिशोर
20. मनोवैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्र - भैरवनाथ झा
21. शिक्षाशास्त्र - डॉ. सिताराम जायस्वाल
22. हिंदी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
23. कामसूत्र - वात्सायन
24. आधुनिक मनोविज्ञान - लालजीराम शुक्ल
25. किशोर मनोविज्ञान की भूमिका - सरयुप्रसाद दौबे
26. हिंदी उपन्यास कला - डॉ. प्रतापनारायन टंडन
27. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य - डॉ. बेचैन

पत्र-पत्रिकाएँ -

1. सारिका - अंक - 258- मार्च, 1980
2. आलेख - मैं, मेरा समय और मेरा रचना संसार
3. हंस - संपा. राजेंद्र यादव- मार्च, 2000
4. अमर उजाला - रुपायन- 14 अगस्त, 2009
5. दैनिक भास्कर - रवींद्रनाथ टैगोर